* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

दीपावली-दर्शन

भगवती श्रीदुर्गाजी

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

वन्दे वन्दनतुष्टमानसमतिप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम्।
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम्॥

वर्ष ९१

गोरखपुर, सौर कार्तिक, वि० सं० २०७४, श्रीकृष्ण-सं० ५२४३, अक्टूबर २०१७ ई०

संख्या १०

पूर्ण संख्या १०९१

'जय दुर्गे दुर्गतिनाशिनि जय'

जय दुर्गे दुर्गतिनाशिनि जय। जय मा कालविनाशिनि जय जय॥
जयति शैलपुत्री मा जय जय। ब्रह्मचारिणी माता जय जय॥
जयति चन्द्रघण्टा मा जय जय। जय कूष्माण्डा, स्कन्दजननि जय॥
जय मा कात्यायिनी जयति जय। जयति कालरात्री मा जय जय॥
जयति महागौरी देवी जय। जयति सिद्धदात्री मा जय जय॥
जय काली, जय तारा जय जय। जय जगजननि षोडशी जय जय॥
जय भुवनेश्वरि माता जय जय। जयति छिन्नमस्ता मा जय जय॥
जयति भैरवी देवी जय जय। जय जय धूमावती जयति जय॥
जय बगला मातंगी जय जय। जयति जयति मा कमला जय जय।

× × ×

स्नेहमयी सौम्या मैया जय। जय जननी जय जयति-जयति जय॥

[पद-रत्नाकर]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर कार्तिक, वि० सं० २०७४, श्रीकृष्ण-सं० ५२४३, अक्टूबर २०१७ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या

१- 'जय दुर्गे दुर्गतिनाशिनि जय' ३
२- कल्याण ५
३- श्रीअयोध्यापुरीमें दीपमालिकोत्सव [आवरणचित्र-परिचय] ६
४- सावधान रहनेकी आवश्यकता ७
५- एक प्रसिद्ध महात्माके उद्‌गार ८
६- अमृत-कण
(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ९
७- सच्चा भक्त [प्रेरक-प्रसंग] (श्रीशिवकुमारजी गोयल) ११
८- 'बिनु हरिभजन न जाहिं कलेसा'
(मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय)
[प्रेषक—श्रीअमृतलालजी गुप्ता] १२
९- दीवाली
(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ... १४
१०- 'ज्योति बुझने न पाये' [कविता] (श्रीमती इन्दुमती पाण्डेय) . १५
११- सहनशक्ति बढ़ाइये (श्रीअगरचन्दजी नाहटा) १६
१२- 'हरि भज बन्दे आठों याम' [कविता] (श्रीगोपालजी भारतीय). १८
१३- साधकोंके प्रति—['वासुदेव: सर्वम्']
(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) १९
१४- 'सीता सहित अनुज प्रभु आवत' (श्रीअर्जुनलालजी बंसल) ... २२
१५- 'ढाई आखर प्रेमका' (श्रीमती आशाजी गुप्ता) २५
१६- सारथि (श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन) २६
१७- ईश्वरमें विश्वास
(श्रीलक्ष्मणस्वरूपजी माहेश्वरी, एम०ए०, एल०एल०बी०) .. २९
१८- साधन-सूत्र (आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा) ३०
१९- संत-वाणी
[ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज] ३१
२०- समर्थ गुरु रामदास स्वामी [संत-चरित] ३२
२१- तनावरहित जीवन जीनेकी कला (संत श्रीहरिजी महाराज) ... ३५
२२- गोविन्द (श्रीरामस्वरूपदासजी पाण्डेय) ३६
२३- साधनोपयोगी पत्र ३८
२४- व्रतोत्सव-पर्व [कार्तिकमासके व्रत-पर्व] ४०
२५- कृपानुभूति ४१
२६- पढ़ो, समझो और करो ४२
२७- मनन करने योग्य ४५
२८- श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना ४६
२९- श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना ४९

चित्र-सूची

१- दीपावली-दर्शन .... (रंगीन) .... आवरण-पृष्ठ
२- भगवती श्रीदुर्गाजी .... (,,) .... मुख-पृष्ठ
३- दीपावली-दर्शन .... (इकरंगा) ६
४- रथी और सारथि .... (इकरंगा) २८
५- समर्थ गुरु स्वामी रामदास .... (,,) ३२
६- भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते इन्द्र ... (,,) ३७

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

सन् २०१८ के लिये शुल्क
एकवर्षीय ₹२५०
पंचवर्षीय ₹१२५०

चालू वर्षका शुल्क
एकवर्षीय ₹२२०

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — वार्षिक US$ 50 (₹3000), पंचवर्षीय US$ 250 (₹15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**
आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**राधेश्याम खेमका,** सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | **09235400242/244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**
Online सदस्यता-शुल्क -भुगतानहेतु- gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।
अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ें।

कल्याण

***याद रखो*—**भगवान् सदा सर्वत्र विराजमान हैं। तुम्हारे हृदयके गंभीर अन्तस्तलमें भी वे सदा-सर्वदा रहते हैं। अकेली कोठरीमें तुम जो कुछ करते हो, उसको वे जानते-देखते हैं, इसमें तो कहना ही क्या है; तुम अपने हृदयके अत्यन्त गोपनीय स्थलमें विचाररूपसे भी जो कुछ सोचते-विचारते हो, जिसका कभी-कभी तुम्हें भी स्पष्ट ज्ञान नहीं होता, उसे भी वे प्रत्यक्ष करते हैं। ऐसा कभी, कहीं, कुछ होता ही नहीं, जिसे भगवान् न जान पाते हों, न देख पाते हों।

***याद रखो*—**यदि भगवान्‌की इस सर्वज्ञता और सर्वसाक्षितापर तुम्हारा विश्वास हो जाय तो फिर तुम छिपकर भी कभी कोई निषिद्ध कर्म नहीं कर सकते। मनकी गहरी गुफामें भी कोई पापकी बात नहीं सोच सकते। यह सभी जानते हैं कि जब मनुष्य कोई बुरा कर्म करना चाहता है, उस समय यदि उसे यह संदेह भी हो जाता है कि मेरे इस कर्मको कोई संभ्रान्त पुरुष, कोई पुलिसवाला मामूली सिपाही अथवा कोई साधारण मनुष्य भी देखता है तो वह उस बुरे कर्मसे हट जाता है। उसे संकोच, लज्जा और भय मालूम होता है उस कर्मका आचरण करते। फिर यहाँ तो स्वयं सर्वलोक-महेश्वर, सर्वज्ञशिरोमणि, सर्वसमर्थ भगवान् तुम्हारे प्रत्येक कर्मको देख रहे हैं। ऐसी अवस्थामें तुमसे पाप क्योंकर बन सकते हैं। पर जब बनते हैं—पापके विचार मनमें आते हैं और पापकी क्रिया भी तन-वचनसे होती है, तब यही कहना पड़ता है कि भगवान्‌की सर्वत्र व्याप्त सत्तापर तुम्हारा विश्वास नहीं है। भगवान्‌की सत्तापर विश्वास आते ही मनुष्य पाप-कर्मसे छूट जाता है।

***याद रखो*—**भगवान् बड़े ही दयालु हैं। तुम उनकी सत्तापर विश्वास नहीं करते, तो भी वे तुमपर नाराज नहीं होते। वैसे ही, जैसे बच्चेके अपराधपर माँ नाराज नहीं होती। उनकी इस दयालुतापर विश्वास करो और उन्हींसे यह वर माँग लो, जिसमें उनकी सर्वगत सत्ता तथा सदा-सर्वत्र स्थितिपर तुम्हारा अटल विश्वास हो जाय।

***याद रखो*—**भगवान् सदा-सर्वत्र विराजमान हैं, इस सत्यपर विश्वास होते ही तुम पापरहित तो हो ही जाओगे, निर्भय भी हो जाओगे। पुलिसका सिपाही साथ रहता है तो मनुष्य चोर-डाकुओंसे निर्भय हो जाता है, फिर जब साक्षात् अखिल-लोक-सम्राट् सर्वशक्तिमान् भगवान् तुम्हारे साथ होंगे, तब तुम्हें किससे, कैसा भय रहेगा? फिर तो प्रत्येक स्थितिमें भगवान्‌को अपने साथ जानकर तुम निर्भय रहोगे।

***याद रखो*—**भगवान्‌की सत्तापर विश्वास होते ही तुम निश्चिन्त भी हो जाओगे; क्योंकि भगवान् सर्वलोकमहेश्वर और सर्वशक्तिमान् होनेके साथ ही तुम्हारे सहज सुहृद् भी हैं। और उनको तुम नित्य अपने साथ अपने अत्यन्त समीप देखते हो। भगवान्-सा परम सुहृद् जिसके साथ हो, उसको किस बातकी चिन्ता रहेगी। वह परम सुहृद् अपने-आप ही किस बातमें कब, कैसे तुम्हारा कल्याण होगा, उस बातको सोचेगा और पूरी करेगा। उसके सोचनेमें भूल भी नहीं होगी, क्योंकि वह सर्वज्ञ-शिरोमणि है; उसके द्वारा तुम्हारा काम हो ही जायगा; क्योंकि वह सर्वशक्तिमान् है और वह तुम्हारा काम निश्चय ही उल्लासपूर्वक करेगा, क्योंकि सुहृद्‌का यही स्वभाव होता है।

***याद रखो*—**तुमसे जो प्रकाश-अप्रकाशमें पाप बनते हैं, तुम्हें जो एकान्तमें भूतकी कल्पनासे भय लगता है, तुम जो पद-पदपर विभिन्न कारणोंसे डरते हो और तुम जो दिन-रात योगमोक्षके चिन्तानलसे जलते रहते हो, इसका एकमात्र कारण यही है कि तुम्हारा सर्वशक्तिमान् सर्वेश्वर परम सुहृद् भगवान्‌की नित्य सर्वत्र सत्ता एवं स्थितिमें विश्वास नहीं है। विश्वास करो और सहज ही पापरहित, भयरहित और चिन्ता-विषाद-रहित बन जाओ। देखो—कितना सरल साधन है यह समस्त पाप-तापसे मुक्त होनेका। **'शिव'**

श्रीअयोध्यापुरीमें दीपमालिकोत्सव

अकारो ब्रह्म च प्रोक्तं यकारो विष्णुरुच्यते।
धकारो रुद्ररूपश्च अयोध्यानाम राजते॥

अर्थात् 'अ'कार ब्रह्मा है, 'य'कार विष्णु है तथा 'ध'कार रुद्रका स्वरूप है। अतएव 'अयोध्या' पितामह ब्रह्मा, विष्णु तथा भगवान् शंकर—इन तीनोंका समन्वित स्वरूप है, इसलिये इसे अयोध्या कहते हैं। यह भगवान् विष्णुकी आदिपुरी है और उनके सुदर्शन चक्रपर स्थित है, अतएव पृथ्वीपर अतिशय पुण्यदायिनी है। इस पुरीकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है, जहाँ साक्षात् भगवान् विष्णु श्रीरामरूपमें निवास करते हैं। भगवान् श्रीराम इस अयोध्यापुरीकी महिमाका वर्णन करते हुए स्वयं कहते हैं—

जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। बेद पुरान बिदित जगु जाना॥
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ॥
जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि बह सरजू पावनि॥
जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा॥

अयोध्या सरयूके तटपर बसी है। यह दिव्य पुरी परम शोभासे युक्त है। इस पुरीको स्वयं महाराज मनुने बनवाया और बसाया था। महाराजा दशरथने अपने शासन-कालमें उस पुरीका वैसे ही संवर्धन किया, जैसे स्वर्गमें देवराज इन्द्रने अमरावतीपुरीका। उस अयोध्यापुरीकी शोभा विचित्र थी। उसके महलोंपर सोनेका पानी चढ़ाया गया था और वे नाना प्रकारके रत्नोंसे जटित थे। वे गगनचुम्बी प्रासाद पर्वतोंके समान जान पड़ते थे। उस श्रेष्ठ पुरीमें कोई भी ऐसा कुटुम्बी नहीं था, जिसके पास उत्कृष्ट वस्तुओंका संग्रह अधिक मात्रामें न हो।

भगवान् श्रीरामके समयमें तो अयोध्याकी श्री-सम्पदाका वर्णन ही नहीं किया जा सकता; स्वयं लक्ष्मीपति भगवान् जहाँ राजा हों, उस नगरका वर्णन कैसे किया जा सकता है! उस समय तो अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ और सम्पूर्ण सुख-सम्पत्तियोंका अयोध्यामें ही निवास हो गया था।

यद्यपि अयोध्या भगवान् श्रीरामकी मंगलमयी पवित्र पुरी होनेसे सदा सुहावनी रहती है, परंतु दीपमालिकोत्सव-जैसे विशेष अवसरपर तो उसके सौन्दर्यका कहना ही क्या है! घरोंमें मणियोंके दीपक शोभा दे रहे हैं। पन्नेसे जड़ी हुई सोनेकी दीवारें ऐसी सुन्दर हैं, मानों ब्रह्माने खास तौरपर बनायी हों। महल सुन्दर, मनोहर और विशाल हैं। उनमें सुन्दर स्फटिकके आँगन बने हैं। प्रत्येक द्वारपर बहुत-से खरादे हुए हीरोंसे जड़े हुए सोनेके किंवाड़ हैं—

मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरीं बिद्रुम रची।
मनि खंभ भीति बिरंचि बिरची कनक मनि मरकत खची॥
सुंदर मनोहर मंदिरायत अजिर रुचिर फटिक रचे।
प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे॥

सायंकाल स्वयं श्रीरघुनाथजी अपनी राजधानीकी मनोहर दीपमालिकाको प्रीतिपूर्वक देख रहे हैं। स्फटिक-मणिकी भीतोंके ऊपर सुवर्णमय दीपकोंकी पंक्ति इस प्रकार शोभायमान हो रही है, मानो श्रीरघुनाथजीसे मिलने मणिविभूषित सहस्रफणधारी शेषजी आये हों। प्रत्येक महलके कलशोंके ऊपर मणिगण अपनी कान्तिसे इस प्रकार शोभा पा रहे हैं, मानो बहुत-से मंगल-लोक उत्पन्न करके पृथ्वीपर भेज दिये गये हों। घर-घरमें मंगलाचार हो रहा है तथा निर्धन-धनी सभी एक समान आनन्दित हैं। गोस्वामीजी इस सुन्दर दृश्यका शब्दचित्र प्रस्तुत करते हैं—

साँझ समय रघुबीर-पुरीकी सोभा आजु बनी।
ललित दीपमालिका बिलोकहिं हित करि अवध धनी॥
फटिक-भीत-सिखरन-पर राजति कंचन-दीप-अनी।
जनु अहिनाथ मिलन आयो मनि-सोभित सहस फनी॥
प्रति मंदिर कलसनि पर भ्राजहिं मनिगन दुति अपनी।
मानहुँ प्रगटि बिपुल लोहितपुर पठइ दिये अवनी॥
घर घर मंगलचार एकरस हरषित रंक-गनी।
तुलसिदास कल कीरति गावहिं, जो कलिमल-समनी॥

सावधान रहनेकी आवश्यकता

अभी-अभी कुछ समय पूर्व एक घटना सामने आयी, जिसकी चर्चा कई दिनोंसे चल रही है। पिछले कई दिनोंसे भी इस प्रकारके समाचार मिलते रहे हैं कि कुछ व्यक्ति साधुवेशमें अनाचार, व्यभिचारका आश्रय लेकर अवैध, अश्लील धंधा चलाते हुए भोलीभाली मासूम बालाओंको इसका शिकार बना रहे हैं। ऐसे व्यक्ति साधुवेशको कलंकित करते हुए समाज, राष्ट्र और देशका वातावरण विषाक्त करते हैं। जब किसी व्यक्तिके जीवनका लक्ष्य स्वार्थ और भोग हो जाता है, तो उसकी बुद्धि तमसाच्छन्न हो जानी स्वाभाविक है। ऐसे व्यक्ति भोगोंमें संलिप्त होकर अर्थ-कामपरायण तो होते ही हैं, उनके सभी कार्य अनर्गल, अवैध तथा आसुरीभावोंसे सम्पन्न होते हैं। भगवान्, परलोक और धर्मका प्रयोग वे समाजको ठगनेके लिये दिखावेके रूपमें करते हैं। ऐसे व्यक्तिको 'दम्भी' कहा जाता है। अपने शास्त्रोंमें आध्यात्मिक दृष्टिसे दम्भकी बड़ी निन्दा है। ऐसा व्यक्ति शास्त्र, देवता तथा ऋषियोंको निमित्त बनाकर तथा धर्म और भगवान्की दुहाई देकर भोलीभाली धर्मभीरु जनताको अपनी ओर आकर्षित करता हुआ अपनी कामवासनाओंको तृप्त करनेका प्रयास करता है और दूसरोंको भी इस प्रकारके आचरण करनेकी प्रेरणा देता है। इस प्रकारके भौतिक जीवनसे संलग्न व्यक्तिका चारित्रिक पतन तो अवश्यम्भावी है। अत: सर्वसाधारणको ऐसे लोगोंसे सावधान रहनेकी अत्यन्त आवश्यकता है। कारण, कुसंग व्यक्तिको पतनके गर्तमें गिरा देता है।

भारत धर्मप्रधान देश है। यह संत-महात्माओंकी पवित्र लीलाभूमि है। भगवत्प्राप्तिके साधक विभिन्न सम्प्रदायोंके द्वारा इस देशमें चिरकालसे पवित्र भगवद्भावोंका प्रचार होता आया है। इस देशने ऐसे महापुरुषोंको जन्म दिया है, जिनसे जनमानसको समय-समयपर आध्यात्मिक मार्गदर्शन प्राप्त होता रहा है। इसीलिये कभी-कभी गेहूँके साथ घुन पिसनेकी कहावत भी चरितार्थ हो जाती है।

परंतु वास्तविकता यह है कि कलिका प्रभाव तेजीसे बढ़ रहा है। प्रत्येक क्षेत्रमें बहुत तेजीसे गिरावट आ रही है। संत-महात्मा भी इसके शिकार हो रहे हैं। आजकल अधिकतर लोग सत्संग और वैराग्यके आवेशमें आकर घर-बार छोड़कर साधु बन जाते हैं और कभी-कभी सात्त्विक भावोंसे आविष्ट होकर साधनामें संलग्न होते हुए समाजमें संत-महात्माके रूपमें उनकी प्रस्तुति होती है, परंतु विषयोंके संस्पर्शसे न बच पानेके कारण भोग-विलासमें उनकी प्रवृत्ति हो जानी स्वाभाविक है। भगवद्गीतामें भगवान्ने कहा है—**'ये हि संस्पर्शजा भोगा दु:खयोनय एव ते। आद्यन्तवन्त: कौन्तेय न तेषु रमते बुध:॥'** (५।२२) ये जो इन्द्रियों तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले भोग हैं। वे दु:खके ही हेतु हैं और आदि-अन्तवाले हैं अर्थात् अनित्य हैं। इसलिये हे अर्जुन! बुद्धिमान्, विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता।

एक सत्य घटना है—वृन्दावनके एक वृद्ध सन्त, जो उन दिनों बंगालीबाबाके नामसे प्रसिद्ध थे। उनकी आयु लगभग सौ वर्ष थी। वे उच्चकोटिके साधक थे। संत-महात्माओं और भक्तोंमें उनके प्रति अत्यधिक श्रद्धा और आदरका भाव था। उड़ियाबाबा आदि कई अच्छे संत उनसे मार्गदर्शन प्राप्त करते थे। उनके महाप्रयाणके समय अन्तिम कालमें उनके अनुयायी भक्त और संत-महात्माओंने उनसे पूछा कि महाराज! आप अपने जीवनमें की हुई साधनाके अनुभवकी कोई सार बात हम सबको बता दें, जिसे हम भी अपने जीवनमें उतार सकें। तो उन महात्माने कहा कि जीवनका खास अनुभव बताता हूँ—यदि मेरे सामने करोड़ों-अरबों रुपये रख दो तो मैं उसे देखूँगा भी नहीं, परंतु यदि मेरे समक्ष एकान्तमें कोई युवती स्त्री आ जाय तो उस समय मेरी स्थिति क्या होगी, यह मैं नहीं जानता। अर्थात् ऐसी परिस्थितिमें स्वयंपर भी मेरा विश्वास नहीं। अत: संत-महात्मा, भक्त और अपना कल्याण चाहनेवाले साधकको पूरी सावधानीके साथ इससे बचना चाहिये। परंतु आजकल कई माता-बहनें गुरुदीक्षा ले लेती हैं और समर्पणभावसे सेवाकी स्वाभाविक प्रवृत्तिके कारण अपने गुरुकी सेवामें संलग्न हो जाती हैं, जिसका परिणाम कभी-कभी भयावह हो जाता है। कभी-कभी तो साधुवेशमें वंचक (ठग) होते हैं, जो इसका पूरी तरह दुरुपयोग करते हैं।

अपने शास्त्रोंमें यह स्पष्ट निर्देश है कि **'पतिरेव गुरु: स्त्रीणां वर्णानां ब्राह्मणो गुरु:'** स्त्रीका गुरु तो पति ही है। यहाँ मूल श्लोकमें **'एव'** शब्दका प्रयोग होनेके

कारण स्त्रियोंके लिये अन्य गुरुका निषेध अपने आप हो जाता है। कई अच्छे संत आज भी किसी स्त्रीसे एकान्तमें नहीं मिलते, एकान्तमें वार्ता नहीं करते। परंतु ऐसे संत संख्यामें नगण्य हैं।

यद्यपि शास्त्रोंमें गुरुकी महिमा भी बतायी गयी है, परंतु परमात्ममार्गका गुरु तो वही हो सकता है, जो शिष्यके अज्ञानान्धकारको हरकर ज्ञानकी दिव्य ज्योति प्रदान करे और भगवत्प्राप्तिके पावन पथपर अग्रसर करनेमें समर्थ हो। पर ऐसे गुरु आजकल मिलने बहुत कठिन हैं। वंचक गुरुओंके द्वारा भोली-भोली जनताके ठगे जानेकी सम्भावना प्रबल है।

अत: निरापद मार्ग यही है कि परमात्म-प्रभुका ही हम गुरुरूपमें वरण करें। इसीलिये हमारे महापुरुषोंने कहा है—'**कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्**' भगवान् श्रीकृष्णकी वन्दना जगद्गुरुके रूपमें की जाती है। गोस्वामीजीने भी हनुमानचालीसामें हनुमान्‌जी महाराजकी गुरुरूपमें वन्दना की है—***'जै जै जै हनुमान गोसाईं। कृपा करहु गुरु देव की नाईं॥'*** इसी प्रकार सन्तोंने भगवान् सदाशिवको परम गुरुके रूपमें प्रणाम किया है। जिस देवमें श्रद्धा टिकती हो, उनका ही मानसिक रूपसे गुरुरूपमें वरण कर लेना चाहिये। इसके साथ ही मध्यम मार्गसे संत-महात्माओंके सत्संगका लाभ प्राप्त करना चाहिये और उनकी कल्याणकारी बातोंको अपने जीवनमें उतारनेका पूर्ण प्रयास करना चाहिये। सत्संगकी तो बड़ी महिमा है, परंतु सन्निकटताकी आवश्यकता नहीं; कारण, इससे कभी-कभी संतमें भी दोषदृष्टि हो जाती है, जो कल्याणकारी नहीं है, अत: इससे बचना चाहिये।

—राधेश्याम खेमका

एक प्रसिद्ध महात्माके उद्गार

लोग मेरी पूजा करनेको बहुत उत्सुक रहते हैं; पर जब मैं उनसे उसकी पूजा करनेको कहता हूँ, जिसकी पूजा मैं भी करता हूँ, तो वे मेरी बातोंकी उपेक्षा करते हैं! मुझे यह देखकर खेद होता है कि वे किसी सच्चे महात्माको प्राप्त करनेके अधिकारी नहीं। धूर्तोंद्वारा वे ठगे जा सकते हैं, किंतु किसी भी सदाशयके हितकारी वचन उनके हृदयतक नहीं पहुँचते।

स्वार्थने संसारको अन्धा कर दिया है। लोग मुझे शरीरसे निरपेक्ष और समदर्शी कहते हैं। आश्चर्य तो यह है कि मुखसे ऐसा कहते समय भी वे मेरेद्वारा अपना कुछ लाभ होनेकी इसलिये आशा रखते हैं; क्योंकि वे मेरे निकट सम्पर्कमें रहते और मेरी शारीरिक सेवाओंमें तत्परतासे लगे रहते हैं।

मैं स्पष्ट देखता हूँ कि लोग मुझे झूठा और महात्मा एक साथ समझते हैं! जब मैं उनसे कहता हूँ 'मुझमें कोई सिद्धि नहीं, मेरी चरणधूलि लेने या पूजा करनेसे कोई लाभ नहीं, मैं भी तुम्हारी भाँति साधारण पुरुष हूँ' तो वे इन शब्दोंको हँसीमें उड़ा जाते हैं। इनपर वे विश्वास नहीं करते। इसके विरुद्ध मुझसे ऐसी आशा रखते हैं, जिसे मैंने स्पष्ट अस्वीकार कर दिया है।

श्रद्धालु कहे जानेवालोंकी भीड़ चाहती है कि मैं दिन-रात उनके सामने बोला करूँ, उनके ऊटपटांग पदार्थ खाता रहूँ, इतनेपर भी स्वस्थ रहूँ! वे साधन करनेका अवकाश नहीं देना चाहते; परंतु साधननिष्ठसे होनेवाले लाभको चाहते हैं। अच्छे भोजन, अच्छे वस्त्रमें रखकर वे मुझे त्यागी कहते हैं। मैं सोचता हूँ कि वे मेरा उपहास कर रहे हैं।

स्त्रियोंने तो और भी ऊधम मचा रखा है। वे चाहती हैं कि एकान्तमें मैं उनकी पूजा ग्रहण करूँ, उन्हें उपदेश दूँ। उनके अभिभावक भी यही चाहते हैं। साथ ही सब चाहते हैं कि मैं निर्विकार रहूँ। एक कलियुगके प्राणीसे वह आशा की जाती है जो पराशर, विश्वामित्र, शृंगीऋषि प्रभृतिके लिये भी विफल रही है।

जबतक ऐसी परिस्थिति है, धूर्तोंसे समाजको नहीं बचाया जा सकता। घृणित काण्डोंका होना बन्द नहीं होगा। साधक एवं महात्माओंको भगवान् ही बचायें तो बचें। प्रभु समाजको सुबुद्धि दें। वह अपने एवं साधकोंके पतनके इस मार्गसे बचे। [कल्याण वर्ष १४।५]

अमृत-कण

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

❀ मनुष्य-जीवनका समय बहुत मूल्यवान् है। यह बार-बार नहीं मिल सकता। इसलिये इसे उत्तरोत्तर भजन-ध्यानमें लगाना चाहिये।

❀ मृत्यु किसीको सूचना देकर नहीं आती, अचानक ही आ जाती है। यदि भगवान्के स्मरणके बिना ही मृत्यु हो गयी तो यह जन्म व्यर्थ ही गया। मृत्यु कब आ जाय, इसका कोई भरोसा नहीं। अत: भगवान्के स्मरणका काम कभी भूलनेका नहीं।

❀ मनुष्यको विचार करना चाहिये कि मैं कौन हूँ, क्या कर रहा हूँ और किस काममें मुझे समय बिताना चाहिये। बुद्धिसे विचारकर वास्तवमें जिसमें अपना परम हित हो, वही काम करना चाहिये।

❀ यदि अपने आत्माका उद्धार करना हो तो सब सात-पाँचको छोड़कर हर समय भगवान्का भजन करे।

❀ भगवान्को छोड़कर और कहीं भी मनको न लगाये, जो भगवान्को छोड़कर अन्य किसीका भक्त नहीं, वही अनन्यभक्त है।

❀ अपनी बुद्धिसे विचार करे कि क्या करना अच्छा है और क्या करना बुरा। जो बुरा हो, उसका त्याग कर दे और जो अच्छा हो, उसके पालनमें तत्पर हो जाय।

❀ भगवान्का भजन-साधन करनेमें यदि शरीर सूखने लगे, मृत्यु भी हो जाय तो कोई हर्ज नहीं।

❀ जब शरीरके लिये संग्रह किये हुए संसारके पदार्थ साथ नहीं जा सकते तो उनके लिये अपना अमूल्य समय लगाना व्यर्थ है। जगत्में जितने मनुष्य हैं, प्राय: किसीको भी अपने पूर्वजन्मका ज्ञान नहीं है। इसी प्रकार इस वर्तमान घरको छोड़कर चले जायँगे तब इसे भी भूल जायँगे। फिर इतना परिवार और धन किसलिये इकट्ठा किया? यह हमारे क्या काम आयेगा? जब आगे यह किसी भी काम नहीं आयेगा तो हमें चाहिये कि इस लौकिक सम्पत्तिका मोह छोड़कर दैवी सम्पत्तिका भंडार भरें। अपने हृदयसे दुर्गुण-दुराचारोंको हटाकर सद्गुण-सदाचारोंको भर लें।

❀ साधन न होनेमें अश्रद्धा ही प्रधान कारण है, इसको हटाना चाहिये।

❀ ईश्वरने हमको जो कुछ भी तन, मन, धन, कुटुम्ब, विद्या, बल, बुद्धि, विवेक आदि दिया है, उसे ईश्वरकी सेवामें ही लगा देना चाहिये। जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री प्रत्येक कार्यमें पतिकी प्रसन्नताका ख्याल रखती है, इसी प्रकार हम जो भी कार्य करें, पहले विचार लें कि इससे भगवान् प्रसन्न हैं या नहीं। वही कार्य करे, जिससे भगवान्की प्रसन्नता प्राप्त हो।

❀ जिस प्रकार कठपुतलीको सूत्रधार नचाता है, वैसे ही वह नाचती है। उसी प्रकार भगवान्की आज्ञाके अनुसार चलें। जैसे वे करावें, वैसे ही करें।

❀ भगवान्की भक्तिमें किसी भी जाति और वर्णके लिये कोई रुकावट नहीं है, आवश्यकता है केवल विशुद्ध प्रेमकी।

❀ हर समय भगवान्को याद रखते हुए ही समस्त कार्य करे। भगवत्-स्मृतिरूप सूर्यके सामने अन्धकार नहीं रह सकता। भगवत्-स्मृतिसे सब दोष स्वत: ही दूर हो जाते हैं।

❀ अपने ऊपर भगवान्की और महापुरुषोंकी विशेष दया समझकर यह अनुभव करे कि हमारी दिनों-दिन उन्नति हो रही है। सद्गुणोंका विकास, आसुरी सम्पत्तिका नाश और दैवी सम्पत्तिकी वृद्धि हो रही है एवं साधन प्रत्यक्ष बढ़ रहा है।

❀ श्रीबलरामजीको गायों-बछड़ों और ग्वालबालों सभीमें भगवान् ही दीखते थे, वैसे ही समस्त प्राणियोंमें भगवान्को देखे और इस प्रकार देख-देखकर मुग्ध होता रहे।

❀ भगवान्का सारा विधान जीवोंके वास्तविक कल्याणके लिये ही होता है।

❀ कलियुगमें भगवान् थोड़े ही साधनसे मिल जाते हैं। हमलोगोंको यह मौका मिल गया है, अब इसे छोड़ना नहीं चाहिये।

❀ अपने प्रतिकूल जो भी घटना प्राप्त हो, उसे

भगवान्‌का भेजा हुआ पुरस्कार समझे; उसमें घबराये नहीं; बल्कि परम आनन्दका अनुभव करे। विपत्ति जो भी आती है, भगवान्‌की भेजी हुई आती है। अत: उसे प्यारेका प्रसाद समझे और आनन्दमें मग्न हो जाय। विपत्तिमें भगवान्‌को देखे, क्योंकि विपत्तिमें भगवान्‌का छिपा हुआ प्यारभरा हाथ रहता है।

❀ मनुष्यकी मान्यता फलती है। जो जैसा मानता है, उसे वैसा ही फल होता है। अत: अच्छी-से-अच्छी भावना करनी चाहिये। भावनामें कृपणता क्यों?

❀ मान्यता करनेसे उसके अनुरूप ही अनुभव हो जाता है, अनुभव होनेके बाद वैसी ही स्थिति हो जाती है।

❀ नित्यकर्म, साधन, भजन सभीमें ऊँचे-से-ऊँचा भाव करना चाहिये।

❀ हर समय अपनेपर भगवान्‌की कृपा समझे। कृपा समझनेमें सहायक हैं—सत्संग और स्वाध्याय। अभिप्राय यह है कि भगवत्-सम्बन्धी बातोंका श्रवण, मनन, पठन और आलोचन करे।

❀ भगवद्विषयक ये ग्यारह बातें बहुत मनन करनेयोग्य हैं—१. नाम, २. रूप, ३. लीला, ४. धाम, ५. तत्त्व, ६. रहस्य, ७. गुण, ८. प्रभाव, ९. प्रेम, १०. शान्ति तथा ११. आनन्द।

❀ चार बातें बड़ी अच्छी हैं—१. भगवान्‌के नामका जप, २. स्वरूपका ध्यान, ३. सत्संग (सत्पुरुषोंका संग और सत्-शास्त्रोंका मनन), ४. सेवा। यह साधनकी चतु:सूत्री है। हमको तो अपने ६० वर्षके जीवनमें ये चार बातें सबके साररूपमें मिलीं।

❀ वैराग्य, निष्कामभाव, सत्यभाषण और शास्त्रकी मर्यादाके अनुसार आचरण—इन चार बातोंपर भी मेरा विशेष आग्रह है। परमार्थ-मार्गपर चलनेवालोंको इनके पालनपर विशेष जोर देना चाहिये।

❀ चार चीजोंको विषतुल्य समझकर बिलकुल त्याग दे—१. पाप, २. भोग, ३. प्रमाद, ४. आलस्य।

❀ साधनमें पाँच बड़ी प्रबल घाटियाँ हैं—१. कंचन, २. कामिनी, ३. शरीरका आराम, ४. मान और ५. यश (कीर्ति)।

❀ दूसरेका गुण ही देखे, अवगुण कभी न देखे। मनुष्यको गुणग्राही होना चाहिये।

❀ एक तो होती है सेवा और दूसरी है परम सेवा। सेवा तो यह है कि दूसरोंके लौकिक हितके लिये, शारीरिक सुख पहुँचानेके लिये अपना तन, मन, धन लगा देना। किसी पीड़ित मनुष्यको अन्न, जल, वस्त्र, औषध अपनी योग्यताके अनुसार दे देना, यह उसकी भौतिक सेवा है। परम सेवा वह है कि किसीको भगवान्‌के मार्गमें लगाना तथा जो मनुष्य भगवान्‌के मार्गमें लगे हैं, उनको उनके साधनमें सहायक आवश्यकीय वस्तुओंकी पूर्ति करना, साधनकी अन्य सुविधाएँ प्रदान करना तथा उन्हें सत्संगमें लगाना—इस प्रकार भगवच्चर्चा आदिके द्वारा साधनकी उन्नतिमें हेतु बनना तथा कोई मर रहा हो, उसे गीता, रामायण, भगवन्नाम आदि सुनाना। यह पारमार्थिक सेवा है। यही परम सेवा है। लाख आदमियोंकी भौतिक सेवासे एक आदमीकी परम सेवा बढ़कर है।

❀ भगवान्‌से माँगना ही हो तो यह माँगे कि सारे जीवोंका कल्याण हो जाय, सब सुखी हो जायँ। इस प्रकार सकाम भावसे की गयी प्रार्थना भी निष्काम ही है।

❀ वक्ता और श्रोता दोनों ही पात्र हों तो असर अधिक होता है। दोनोंमेंसे एक पात्र हो तो कम असर होता है और दोनों ही अपात्र हों तो नहींके बराबर असर होता है।

❀ महापुरुषोंकी कोई भी क्रिया बिना प्रयोजन नहीं होती। उनकी सम्पूर्ण क्रियाएँ दूसरोंके हितके लिये—कल्याणके लिये ही होती हैं। वे किसीसे काम लेते हैं तो उसके कल्याणके लिये ही, अपने लिये नहीं।

❀ महान् पुरुष कभी अपनेको महान् नहीं मानते। श्रेष्ठ पुरुष कभी अपनी बड़ाई नहीं चाहते।

❀ जो महात्मा परमात्मामें मिल जाते हैं, वे परमात्मस्वरुप ही हो जाते हैं। परमात्माकी पूजा ही उनकी पूजा है।

❀ महात्मा पुरुषोंके दर्शनसे, उनसे वार्तालाप करनेसे मनुष्य पवित्र हो जाय—इसमें तो कहना ही क्या, उनका स्मरण करनेसे भी अन्त:करण पवित्र हो जाता है।

❀ भगवान्‌का यह नियम है कि **'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'** जो मुझे जैसे भजते हैं,

वैसे ही मैं उनको भजता हूँ।' परंतु महात्माओंका यह नियम नहीं है। उनका नियम इससे भिन्न है कि 'जो हमें नहीं भजते, उन्हें भी हम भजते हैं।'

❀ जैसे आगमें घास डाला जाय तो आग हो जाती है और घासमें आग डाली जाय तो आग हो जाती है। इसी तरह महात्माओंके पास अज्ञानी जाय तो वह भी महात्मा हो जाता है और अज्ञानियोंके पास महात्मा चला जाय तो भी वह अज्ञानी मनुष्य महात्मा हो जाता है; क्योंकि महात्माओंके पास ज्ञानाग्नि है, उससे अज्ञान नष्ट हो जाता है।

❀ महात्माओंका ज्ञान अव्यर्थ है, अमोघ है। उनका संग, दर्शन, भाषण, स्मरण सभी महान् फलदायक होते हैं।

❀ एक दीपकसे जब लाखों दीपक जल सकते हैं तो संसारमें एक महात्माके मौजूद रहते सब महात्मा क्यों नहीं बन सकते।

❀ महात्माका यथार्थ तत्त्व जाननेसे मनुष्य महात्मा ही हो जाता है, जिस प्रकार परमात्माका तत्त्व जाननेसे परमात्मा हो जाता है।

❀ महात्माका तत्त्व तब जाना जाता है, जब मनुष्य उनके आज्ञानुसार आचरण करता है।

प्रेरक-प्रसंग—

सच्चा भक्त

एक बार श्रीकाशीविश्वनाथजीके मन्दिरमें भगवान् विश्वनाथकी प्रेरणासे एक दिव्य थाल प्रकट हुआ। मन्दिरके पुजारी यह देखकर आश्चर्यमें पड़ गये।

इस दिव्य थालपर अंकित था—पूजा करनेको आनेवाले भक्तोंमें जो मेरा सच्चा प्रीतिकर भक्त होगा, उसतक यह थाल स्वयं चलकर पहुँच जायगा।

काशीनरेशको इस दिव्य थाल तथा उसपर अंकित सन्देशकी जानकारी दी गयी। उन्होंने सर्वत्र घोषणा करवा दी कि शिवरात्रिके दिन भगवान् विश्वनाथजीके सबसे प्रीतिकर भक्तको यह थाल मिलेगा।

शिवरात्रिका दिन था। दूर-दूरसे शिवभक्त भगवान् विश्वनाथके मन्दिरमें पहुँचने लगे। बड़े-बड़े ध्यानी, तपस्वी, भक्तजन, सन्त-महात्मा, योगी, यति, ज्ञानी मन्दिरके समक्ष एकत्रित हो गये। नाम-संकीर्तन, हर-हर महादेव तथा भगवान् विश्वनाथजीके जयकारोंसे काशीनगरी गूँज उठी। शिवभक्त हाथोंमें गंगाजलसे भरे पात्र, बिल्वपत्र, धतूरा, प्रसाद आदि लेकर भगवान् विश्वनाथजीके दर्शन करने लगे। सबेरेसे अपराह्न दो बज गये, किंतु वह दिव्य थाल वैसे ही स्थित रहा, किसी भी भक्तकी ओर नहीं खिसका।

अचानक एक सीधा-साधा निश्छल ग्रामीण मन्दिरके प्रांगणमें पहुँचा। उसके हाथमें पावन गंगाजलसे भरा पात्र एवं दोनेमें बिल्वपत्र आदि थे।

वह ग्रामीण जैसे ही मन्दिरके द्वारमें प्रवेश करने लगा कि उसने देखा कि दीवारके पास कोनेमें एक गलित कुष्ठी बैठा हुआ है। उसके शरीरसे पीब चू रहा है। भयंकर दुर्गन्ध आ रही है। वह दर्दसे कराह रहा है। जो भी उधरसे गुजरता, नाकपर वस्त्र रखकर, दुर्गन्धके कारण मुँह बिगाड़ता तेजीसे मन्दिरमें प्रवेश कर जाता।

उस ग्रामीण भक्तने यह देखा तो उसका हृदय करुणाभावनासे अभिभूत हो उठा। वह कुष्ठीके पास पहुँचा और बोला—भैया, तुम घबराओ नहीं। मैं भगवान् विश्वनाथबाबाके दर्शन कर आऊँ, उनपर जल चढ़ा आऊँ, तो तुम्हें अपने साथ अपने गाँव ले चलूँगा। तुम्हारा उपचार कराऊँगा—सेवा करूँगा।

वह निश्छल एवं करुणाहृदय भक्त मन्दिरके अन्दर गया। जैसे ही उसने भगवान् विश्वनाथजीपर गंगाजल चढ़ाया एवं उस कुष्ठीके कल्याणकी कामना की कि वह दिव्य थाल सरककर उसके चरणोंतक पहुँच गया। आकाश बाबा विश्वनाथके जयकारोंसे गूँज उठा। जब वह बाहर आया तो उसे कुष्ठीकी जगह भगवान् विश्वनाथकी आकृतिकी अनुभूति हुई।

—श्रीशिवकुमारजी गोयल

'बिनु हरिभजन न जाहिं कलेसा'

(मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय)

शान्ति किसे नहीं चाहिये? सभी तो अशान्त हैं, बेचैन हैं, व्याकुल हैं, दुखियारे हैं। किसीको इस बातका दु:ख है तो किसीको उस बातका दु:ख! आज एक बातका दु:ख है तो कल दूसरी बातका! संसारके सारे लोग दु:ख-संतप्त हैं। इन दु:खोंसे बाहर कैसे आयें? इन दु:खोंसे छुटकारा कैसे पायें? सही अर्थमें सुख-शान्तिका जीवन कैसे जी सकें?

हमारे देशके ऋषि-मुनियोंने इसी बातकी खोज की है कि दु:खोंसे छुटकारा कैसे मिले? सही अर्थमें सुख-शान्ति कैसे प्राप्त हो? सब एक ही परिणामपर पहुँचे कि बिना हरिभजनके सुख-शान्ति नहीं मिल सकती। सबने अपने-अपने अनुभवके आधारपर मानवके क्लेश और तनावोंको मिटानेके उपाय बताये। भगवान् शिव भगवान उमा (पार्वती)-से कहते हैं—

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजनु जगत सब सपना।

उत्तरकाण्डमें काकभुशुण्डिजी भी अपना अनुभव बता रहे हैं—

निज अनुभव अब कहउँ खगेसा। बिनु हरिभजन न जाहिं कलेसा॥

अत: क्लेशोंसे मुक्ति व सच्ची सुख-शान्ति हरिभजनके अतिरिक्त किसी प्रकार नहीं मिल सकती, लेकिन हरिभजन अर्थात् हरिभक्ति तभी सुख-शान्ति प्रदान करती है जबकि उसे धारण किया जाय। भक्ति तो करें नहीं और उसकी चर्चा करें तो सुख-शान्ति नहीं मिलती। अत: समझें कि भक्ति हमारे व्यवहारमें कैसे उतरे?

भगवान्‌को चन्दन-पुष्प अर्पण करना, इतनेमात्रमें कोई भक्ति पूर्ण नहीं होती, यह तो भक्तिकी एक प्रक्रियामात्र है। भक्ति तो तब होती है, जब सबमें भक्तिभाव जागता है। ईश्वर सबमें है, मैं जो कुछ भी करता हूँ, उस सबको ईश्वर देखते हैं—जो ऐसा अनुभव करता है, उसको कभी पाप नहीं लगता। उसका प्रत्येक व्यवहार भक्तिमय बनता है। वह अतिशुद्ध व्यवहार है और यही तो भक्ति है। जिसके व्यवहारमें दम्भ है, अभिमान है, कपट है, उसका व्यवहार शुद्ध नहीं। जिसका व्यवहार शुद्ध नहीं, उसे भक्तिमें आनन्द आता नहीं।

मानव भक्ति करता है, परंतु व्यवहार शुद्ध नहीं रखता। जिसका व्यवहार शुद्ध नहीं, वह मन्दिरोंमें भी भक्ति नहीं कर सकता। जिसका व्यवहार शुद्ध है,वह जहाँ बैठा है, वहीं भक्ति करता है, और वहीं उसका मन्दिर है। व्यवहार और भक्तिमें बहुत अन्तर नहीं है। अमुक समय व्यवहारका, अमुक समय भक्तिका ऐसा विभाजन नहीं है। रास्ता चलते, गाड़ीमें यात्रा करते अथवा दुकानमें बैठकर धन्धा करते, सर्वकालमें और सर्वस्थलमें सतत भक्ति करनी है। भक्त बाजारमें शाक-भाजी लेने जाय, यह भी भक्ति है। उसका ऐसा भाव है कि—'मैं अपने ठाकुरजीके लिए शाक-भाजी लेने जाता हूँ।' प्रत्येक कार्यमें ईश्वरका अनुसन्धान, इसे कहते हैं पुष्टिभक्ति।

प्रभुका स्मरण करते-करते घरका काम करो तो वह भी भक्ति है। यह घर ठाकुरजीका है। घरमें कचरा रहेगा तो ठाकुरजी नाराज होंगे—ऐसा मानकर झाड़ू देना भी भक्ति है। मेरे प्रभु मेरे हृदयमें विराजमान हैं, उन्हें भूख लगी है। ऐसी भावनासे किया हुआ भोजन भी भक्ति है। बहुत-सी माताओंको ऐसा लगता है कि कुटुम्ब बहुत बड़ा है, जिससे सारा दिन रसोईघरमें ही चला जाता है। सेवा-पूजा कुछ हो नहीं पाती, परंतु घरमें सबको भगवद्रूप मानकर की हुई सेवा—यह भी भक्ति है। भक्ति करनेके लिए घर छोड़ने या व्यापार छोड़नेकी आवश्यकता नहीं। केवल अपने लिये ही कार्य करो,यह पाप है। घरके मनुष्योंके लिये काम करो, यह व्यवहार है और परमात्माके लिये काम करो—यह भक्ति है। कार्य तो एक ही है, परंतु इसके पीछे भावनामें बहुत फर्क है। महत्त्व क्रियाका नहीं, क्रियाके पीछे हेतु क्या है, भावना क्या है—यह महत्त्वपूर्ण है। मन्दिरमें एक मनुष्य बैठा-बैठा माला फेरे, परंतु विचार संसारका करे, दूसरा मनुष्य प्रभुका स्मरण करते-करते बुहारी करे तो उस माला

जपनेवालेसे यह बुहारी करनेवाला श्रेष्ठ है।

अपनी दिनचर्याकी सब क्रियाओंको भगवान्‌से जोड़ दें। हम स्नान कर रहे हैं। क्यों स्नान कर रहे हैं? शरीरको स्वच्छ करनेके लिये; क्योंकि हमें भजन करनेके लिये भगवान्‌के पास बैठना है। हमारे पसीनेकी दुर्गन्ध भगवान्‌को न आ जाय—इस भावनासे स्नान करना भी भक्ति है। हमें कोई रोग लग गया, उसका उपचार करा रहें हैं, क्यों? क्योंकि हम निरोग हो जायँगे तो भगवान्‌का भजन अच्छे-से कर पायेंगे। इस भावनासे रोगका उपचार कराना भी भक्ति बन गया। अत: अपने शरीरकी, मनकी सब क्रियाओंको भगवान्‌से जोड़ दें। इस प्रकार हमारी दिनचर्याकी सब क्रियाएँ भक्तिमय हो जायँगी।

व्यवहार करो। व्यवहार करना खोटा नहीं, परंतु जो व्यवहार प्राप्त हुआ है, उसमें विवेककी आवश्यकता है। मनुष्यको सतत भक्तिमें आनन्द नहीं आता। अपने-जैसे साधारण मनुष्यका मन पाँच-छ: घंटे परमात्माका ध्यान, सेवा-स्मरण करनेके उपरान्त कुछ और माँगने लगता है। निरन्तर मिठाई मिले तो मनमें अभाव होने लगता है, वैसे ही मनुष्यको सतत भक्ति करनेका अवसर मिलनेपर वह भक्ति नहीं कर सकता। भगवान्‌मेंसे उसका मन हट जाता है। जैसे शरीरको थकान होती है, वैसे ही मनको थकान होती है। पाँच-छ: घंटा सेवा करनेके उपरान्त मन थक जाता है। इसलिये दोनों प्रवृत्तियोंको ढूँढ़ता है। भक्तिके लिये प्रवृत्तियोंका निरन्तर त्याग करनेकी आवश्यकता नहीं है। प्रवृत्तियोंको सतत भक्ति बनाओ। भक्ति दो-तीन घंटेकी नहीं, चौबीसों घंटेकी करो। अपनी प्रत्येक प्रवृत्तिको भक्तिमय बनाओ, भक्ति बनाओ।

बड़े-बड़े संत भी प्रारम्भमें धन्धा करते थे। संत यह धन्धा करते-करते ही भक्ति करते थे। और प्रभुको प्राप्त करते थे। नामदेव दर्जी थे, गोरा कुम्हार घड़ा बनाते थे, कबीरजी बुनकर थे, सेना भगत हजामतका काम करते थे। संत धन्धा करते, परंतु सबमें प्रभुको देखते। ग्राहकोंमें भी परमात्माका अनुभव करते। प्रत्येक महापुरुषको अपने धन्धेमें से ज्ञान मिला। प्राचीनकालमें महान् ज्ञानी ब्राह्मण भी वैश्यके घर सत्संगके लिये जाते। जाजलि ऋषिकी कथा है। एक दिन उनको आकाशवाणीसे आज्ञा हुई कि सत्संग करना हो तो जनकपुरमें तुलाधार वैश्यके यहाँ जाओ। जाजलि ऋषि तुलाधारके यहाँ गये।

तुलाधर उस समय दुकानमें काम कर रहे थे। जाजलिको देखकर उन्होंने पूछा—क्या आप आकाशवाणी सुनकर आये हैं? जाजलिको महान् आश्चर्य हुआ कि वैश्य और इतना महान्! तुलाधारसे पूछा कि तुम्हारा गुरु कौन है?

तुलाधारने कहा—मेरा धन्धा ही मेरा गुरु है। मैं अपने तराजूकी डंडी ठीक रखता हूँ। किसीको कम नहीं तौलता, बहुत नफा नहीं लेता। मेरी दुकानपर आनेवाला ग्राहक प्रभुका अंश है, ऐसा मानकर व्यवहार करता हूँ। तराजूकी डंडीकी तरह अपनी बुद्धिको ठीक रखता हूँ, टेढ़ी होने नहीं देता। अपने माता-पिताको परमात्माका स्वरूप मानकर उनकी सेवा करता हूँ तथा धन्धा करता-करता मनमें मालिकका सतत स्मरण रखता हूँ।

धन्धा करनेमें ईश्वरको भूलो नहीं तो तुम्हारा धन्धा भक्ति बन जायगा। ठाकुरजीका दर्शन करनेमें यदि दुकान दीखे तो दुकानका काम-काज करनेमें भगवान् क्यों न दीखें? कोई-कोई वैष्णव दुकानमें श्रीद्वारकानाथजीका चित्र पधराते हैं, यह ठीक है, परंतु द्वारकानाथ सदा हाजिर हैं, ऐसा समझकर व्यवहार करें, यह बहुत जरूरी है। जबतक देहका भान है, तबतक व्यवहार तो करना ही पड़ेगा। व्यवहार करो, परंतु व्यवहार करते-करते परमात्मा सबमें विराजते हैं—यह भूलो मत। व्यवहारमें अपने धर्मको मत छोड़ो। जीवनमें धर्म ही मुख्य है। अन्य चीजें गौण हैं।

यदि हमारी दिनचर्याके व्यवहारमें भगवान्‌की भक्तिका रंग एक बार भी चढ़ गया तो हमारे जीवनके क्लेश एवं तनाव सब दूर हो जायँगे—ऐसा दृढ़ विश्वास है।

[प्रेषक—श्रीअमृतलालजी गुप्ता]

दीवाली

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

दीवालीपर हमारे यहाँ प्रधानतः चार काम हुआ करते हैं—घरका कूड़ा-कचरा निकालकर घरको साफ करना और सजाना, कोई नयी चीज खरीदना, खूब रोशनी करना और श्रीलक्ष्मीजीका आह्वान तथा पूजन करना। काम चारों ही आवश्यक हैं; किंतु प्रणालीमें कुछ परिवर्तन करनेकी आवश्यकता है। यदि वह परिवर्तन कर दिया जाय तो दीवालीका महोत्सव बारहवें महीने न आकर नित्य ही बना रहे और कभी उससे जी ऊबे भी नहीं! पाठक कहेंगे कि यह है तो बड़े मजेकी बात परंतु रोज-रोज इतना खर्च कहाँसे आयेगा? इसका उत्तर यह है कि फिर बिना ही रुपये-पैसेके खर्चके यह महोत्सव बना रहेगा और उनकी रौनक भी इससे खूब बढ़ी-चढ़ी रहेगी। अब तो उस बातके जाननेकी उत्कण्ठा सभीके मनमें होनी चाहिये। उत्कण्ठा हो या न हो, मुझे तो सुना ही देनी है—ध्यानसे सुनिये—

दीवालीपर हम कूड़ा निकालते हैं, परंतु निकालते हैं केवल बाहरका ही। भीतरका कूड़ा ज्यों-का-त्यों भरा रहता है, जिसकी गन्दगी दिनोंदिन बढ़ती ही रहती है। वह कूड़ा रहता है—भीतर घरमें, शरीरके अन्दर मनमें। कूड़ेके कई नाम हैं—काम, क्रोध, लोभ, अभिमान, मद, वैर, हिंसा, ईर्ष्या, द्रोह, घृणा और मत्सर आदि—ये प्रधान-प्रधान नाम हैं। इनके साथी और चेले-चाँटे बहुत हैं। इन सबमें प्रधान तीन हैं—काम, क्रोध और लोभ। इनको साथियोंसहित झाड़ूसे झाड़-बुहारकर बाहर निकालकर जला देना चाहिये। कूड़े-कचरेमें आग लगा देना अच्छा हुआ करता है। जहाँ यह कूड़ा निकला कि घर सदाके लिये साफ हो गया। इसके बाद घर सजानेकी बात रही। हमलोग केवल ऊपरी सजावट करते हैं जिसके बिगड़ने और नाश होनेमें देर नहीं लगती। सच्ची सजावट है अन्दरके घरको दैवी सम्पदाके सुन्दर-सुन्दर पदार्थोंसे सजानेमें। इनमें अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, दया, शौच, मैत्री, प्रेम, सन्तोष, स्वाध्याय, अपरिग्रह, निरभिमानिता, नम्रता, सरलता आदि मुख्य हैं।

हमारी धारणा है कि साफ सजे हुए घरमें लक्ष्मीदेवी आती हैं, बात ठीक है, परंतु लक्ष्मीजी सदा ठहरती क्यों नहीं? इसीलिये कि हमारी सफाई और सजावट केवल बाहरी होती है और फिर वे ठहरीं भी चंचला, उन्हें बाँध रखनेका कोई साधन हमारे पास नहीं है।

हाँ, एक उपाय है, जिससे वे सदा ठहर सकती हैं। केवल ठहर ही नहीं सकतीं, हमारे मना करनेपर भी हमारे पीछे-पीछे डोल सकती हैं। वह उपाय है उनके पति श्रीनारायणदेवको वशमें कर भीतर-से-भीतरके गुप्त मन्दिरमें बन्द कर रखना। फिर तो अपने पतिदेवके चारु चरण-चुम्बन करनेके लिये उन्हें नित्य आना ही पड़ेगा। हम द्वार बन्द करेंगे तब भी वे आना चाहेंगी, जबरदस्ती घरमें घुसेंगी। किसी प्रकार भी पिण्ड नहीं छोड़ेंगी। इतनी माया फैलायेंगी कि जिससे शायद हमें तंग आकर उनके स्वामीसे शिकायत करनी पड़ेगी। जब वे कहेंगे तब मायाका विस्तार बन्द होगा। तब भी देवीजी जायँगी नहीं, छिपकर रहेंगी। पतिको छोड़कर जायँ भी कहाँ? चंचला तो बहुत हैं, परंतु हैं परम पतिव्रता-शिरोमणि! स्वामीके चरणोंमें तो अचल होकर ही रहती हैं।' अवश्य ही फिर ये हमें तंग नहीं करेंगी। श्रीके रूपमें सदा निवास करेंगी।

अच्छा तो अब इन लक्ष्मीदेवीजीके स्वामी श्रीनारायणदेवको वशमें करनेका क्या उपाय है? उपाय है किसी नयी वस्तुका संग्रह करना। दीवालीपर लक्ष्मीमाताकी प्रसन्नताके लिये हम नयी चीजें तो खरीदते हैं, परंतु खरीदते ऐसी हैं, जो कुछ काल बाद ही पुरानी हो जाती हैं। श्रीनारायणदेव ऐसी क्षणभंगुर वस्तुओंसे वशमें नहीं होते। उनके लिये तो वह अपार्थिव पदार्थ चाहिये, जो कभी पुराना न हो, नित्य नूतन ही बना रहे। वह पदार्थ है 'विशुद्ध और अनन्य प्रेम।' इस प्रेमसे परमात्मा नारायण तुरन्त वशमें हो जाते हैं। जहाँ नारायण वशमें होकर पधारे कि फिर हमारे सारे घरमें परम प्रकाश आप-से-आप छा जायगा; क्योंकि सम्पूर्ण दिव्यातिदिव्य प्रकाशका अगाध समुद्र उनके अन्दर भरा हुआ है। हम टिमटिमाते हुए

दीपकोंकी ज्योतिके प्रकाशमें लक्ष्मीदेवीको बुलाते हैं, बहुत करते हैं तो आजकलकी बिजलीकी रोशनी कर देते हैं, परंतु यह प्रकाश कितनी देरका है? और है भी सूर्यके सामने जुगनूकी तरह दो कौड़ीका। श्रीनारायणदेव तो प्रकाशके अधिष्ठान हैं। सूर्य उन्हींसे प्रकाश पाते हैं। चन्द्रमामें चाँदनी उन्हींसे आती है, अग्निको प्रभा उन्हींसे मिलती है। यह बात मैं नहीं कहता, शास्त्र कहते हैं और भगवान् स्वयं अपने श्रीमुखसे भी पुकारकर कहते हैं—

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥

(गीता १५। १२)

जब समस्त जगत्की घोर अमावास्याका नाश करनेवाले भगवान् भास्कर, सुधावृष्टिसे संसारका पोषण करनेवाले चन्द्रदेव और जगत्के आधार अग्निदेवता उन्हींके प्रकाशसे प्रकाशित होते हैं—इन तीनोंका त्रिविध प्रकाश उन्हींके प्रकाशाम्बुधिका एक क्षुद्र कण है, तब जहाँ वह स्वयं आ जायँ, वहाँके प्रकाशका तो ठिकाना ही क्या! उनका वह प्रकाश केवल यहींतक परिमित नहीं है। ब्रह्माकी जगत्-उत्पादिनी बुद्धिमें उन्हींके प्रकाशकी झलक है। शिवकी संहार-मूर्तिमें भी उन्हींके प्रकाशका प्रचण्ड रूप है। ज्ञानी मुनियोंके हृदय भी उसी आलोक-कणसे आलोकित हैं। जगत्के समस्त कार्य, मन-बुद्धिकी समस्त क्रियाएँ उसी नित्य प्रकाशके सहारे चल रही हैं।

अतएव पहले काम, क्रोध, लोभरूप कूड़ेको निकालकर घर साफ कीजिये, फिर दैवी सम्पत्तिकी सुन्दर सामग्रियोंसे उसे सजाइये। तदनन्तर प्रेमरूपी नित्य नवीन वस्तुका संग्रह कीजिये और उससे लक्ष्मीपति श्रीनारायणदेवको वशमें कर हृदयके गम्भीर अन्तस्तलमें विराजित कीजिये, फिर देखिये—महालक्ष्मीदेवी और अखण्ड अपार आलोकराशि स्वयमेव चली आयेंगी! देवीका अलग आवाहन करनेकी आवश्यकता नहीं रह जायगी।

हाँ, एक यह बात आप और पूछ सकते हैं कि श्रीनारायणको वशमें कर देनेवाला वह प्रेम कहाँ, किस बाजारमें मिलता है? इसका उत्तर यह है कि वह किसी बाजारमें नहीं मिलता—***'प्रेम न बाड़ी नीपजै, प्रेम न हाट बिकाय।'*** उसका भण्डार तो आपके अन्दर ही है। ताला लगा है तो उसे खोल लीजिये, खोलनेका उपाय—चाभी श्रीभगवन्नाम-चिन्तन है। प्रेमका कुछ अंश बाहर भी है, परंतु वह जगत्के जड़-पदार्थोंमें लगा रहनेसे मलिन हो रहा है। उसका मुख श्रीनारायणकी ओर घुमा दीजिये। वह भी दिव्य हो जायगा। उसी प्रेमसे भगवान् वशमें होंगे। फिर लक्ष्मीनारायण दोनोंका एक साथ पूजन कीजियेगा। इस तरह नित्य ही दीवाली बनी रहेगी। टका लगेगा न पैसा, पर काम ऐसा दिव्य बनेगा कि हम सदाके लिये सुखी—परम सुखी हो जायँगे। इसीको कहते हैं—

'सदा दिवाली संतके आठो पहर अनन्द'

'ज्योति बुझने न पाये'

(श्रीमती इन्दुमती पाण्डेय)

करो स्वच्छ मनको, जलावो हृदय दीप,
काटो सुदृढ़ बंध, हो मुक्त स्वच्छन्द,
आनन्द का स्रोत, मनमें समाये,
अमर दीप की ज्योति, बुझने न पाये॥ ज्योति.......

अमृतकी सरिता प्रवाहित चहूँ ओर,
फिर भी खड़ा तू, तृषित है, दुखित घोर,
सौरभ सुमन में पवन ज्यों गगन में,
'वह' सर्वत्र है भाव, डिगने न पाये॥ ज्योति.......

वसुधा, विमल शस्य, श्यामल सुखद रूप,
नभके सजल श्याम, घनश्याम प्रतिरूप
रविमें किरण संग, जलमें तृषा संग,
सुरभित मलय संग, हियमें समाये॥ ज्योति.......

जग है, कलुष कंटकों से घिरा जान
हैं, ज्ञानके नेत्र, निज रूप पहिचान,
बसा ले हृदय में, हरी नाम सुखधाम
जगत बंधनोंके भरम टूट जायें॥ ज्योति.......

वह है चिरन्तन, जगत रूप, अभिराम,
जीवन-मरण, पंथ, गतिमान अविराम,
नर-तन है साधन, भजन का सुखद धाम
ऐसा जनम, फिर तू पाये न पाये॥ ज्योति.......

सहनशक्ति बढ़ाइये

(श्रीअगरचन्दजी नाहटा)

भारतीय ऋषियों, मुनियों और महापुरुषोंने तितिक्षा या सहिष्णुताको आध्यात्मिक उन्नतिके लिये बहुत ही आवश्यक माना है। बड़ा बनना या ऊँचा उठना अवश्य ही कष्टसाध्य है। जिसमें सहनशीलता नहीं, वह उन्नति नहीं कर सकता। आध्यात्मिक उत्थानकी बात छोड़ भी दें, व्यावहारिक जीवनमें भी इसकी अत्यन्त आवश्यकता है। प्रकृतिने भी हमें यह सन्देश दिया है कि हम सहनशील बनें। कभी गरमी, कभी सर्दी, कभी लू, कभी वर्षा और कभी ओले गिरते हैं तो कभी भूकम्प होता है। कहीं तीखे काँटे पड़े रहते हैं तो कहीं नुकीले कंकड़; कभी भूख लगती है तो कभी प्यास। इसी प्रकारके अनेक कष्ट, प्रतिकूलताएँ प्रकृतिने ही पैदा की हैं। उन सबको सहन किये बिना जीवन चल नहीं सकता। सहिष्णुतासे ही मनुष्य आगे बढ़ता है और उसकी शक्तियाँ विकसित होती हैं।

इधर संसारमें अनन्त प्राणी हैं। उनकी रुचि, प्रकृति, ध्वनि, आकृति, स्वभाव भिन्न-भिन्न प्रकारके हैं। बहुत-से तो एक-दूसरेके विरोधी भी हैं। अत: एक-दूसरेको जान या अनजानमें कष्ट देते हैं। वचनद्वारा, शरीरद्वारा बहुत कुछ प्रतिकूलताएँ उपस्थित होती हैं और उनको सहन किये बिना चारा नहीं। यदि छोटी-छोटी बातोंके लिये उबल पड़ें, बरस पड़ें, टकरा जायें और संघर्ष छेड़ दें तो जीना दूभर हो जायगा। अत: व्यावहारिक जीवनमें भी इसकी आवश्यकता है ही। पल-पलपर उसका आश्रय लेना पड़ता है।

प्रतिवाद करनेकी शक्ति न हो और अनिच्छासे सहना पड़े, वह सहिष्णुता नहीं है। पर अपनी इच्छासे, बिना किसी विषादके शान्ति और समभावके साथ जो कुछ भी प्रकृति, पुरुषों, पशुओं और देवोंद्वारा कष्ट आयें, प्रतिकूलताएँ हों, उन सबको सह लेना सच्ची सहिष्णुता है। सहिष्णु व्यक्ति घबराता नहीं, चिल्लाता नहीं, परवाह नहीं करता। उसे तो कष्ट झेलनेमें आनन्द आता है। वह प्रतिकूलताओंको अपनी परीक्षाओंका अवसर मानता है, विचलित नहीं होता, डटा रहता है। द्रष्टा होकर देखता रहता है, पर मुह्यमान नहीं होता। धीरज ही उसका सम्बल है। शक्ति ही उसके लिये उपास्य है। समभाव ही उसका आराध्य है। सब परिस्थितियोंमें वह एकरस हो जाता है। कोई मान करे, अपमान करे; कोई गाली दे, निन्दा करे, प्रशंसा करे, मारे-पीटे, झूठा कलंक लगाये और विपत्तियोंमें फँसाये, प्राणान्त कष्ट आ जाय—पर वह हँसते-हँसते सबको झेल लेगा। उफ् और टीसका एक भी शब्द मुँहसे न निकले, प्रतिरोध करनेकी मनमें भावनातक न जगे, वही सच्चा सहिष्णु है। आज हम इतने असहिष्णु बन गये हैं कि थोड़ेसे व्यंग्य या तीखे वाक्योंसे उबल पड़ते हैं, आपेसे बाहर हो जाते हैं, विवेक खो देते हैं। चाहे कोई कुछ बिगाड़ भी न करे, पर हम किसीके कहनेसे या गलत धारणा या भ्रमसे किसीको अपना विरोधी मान लेते हैं, तो मनमें कुढ़ने लगते हैं। बाहरसे कुछ न कह सकें, पर अन्दर द्वेषकी आग भभक उठती है, क्रोधसे भौंहें टेढ़ी हो जाती हैं और आँखें लाल-सुर्ख हो जाती हैं, दाँत पीसने और किटकिटाने लगते हैं। जरा-सा मौका मिला कि विरोधीको पीट डालनेका संकल्प कर बैठते हैं। कहाँ हमारा प्राचीन आदर्श और कहाँ हमारी वर्तमान दैन्य स्थिति? आकाश और पातालका अन्तर हो गया है। कोई सामंजस्य ही दिखायी नहीं देता। पूर्वज क्या थे? हम क्या हो गये हैं! उन्होंने क्या रास्ता दिखाया, हम किधर जा रहे हैं। जरा गहराईसे, ठण्डे दिमागसे सोचें तो अपनी बड़ी भूलका पता स्पष्ट चल जायगा।

और तो और, हमारे धर्म, जो हमें क्षमा, करुणा, मैत्री, तितिक्षाका सन्देश देते रहते हैं, उन धर्मोंके मामलोंमें हमारी यह असहिष्णुता और भी अधिक दिखायी देती है। शान्तिका स्थान अशान्तिका अड्डा बन गया है। बहुत बार ऐसा लगता है कि पानीमें आग लग गयी, असम्भव सम्भव हो गया। बाड़ ही खेतको खा गयी, रक्षक ही भक्षक बन गये। पर्वतसे

गिरे और पातालमें जा धँसे। आदर्श कितना ऊँचा, पर व्यवहार बड़ा नीचा। इस खाईको पाटनेका इलाज नहीं, यही खेद और आश्चर्य है! इसका इलाज हो भी क्या? भाई-भाई लड़ पड़े, बेटा-बाप लड़ पड़े, गुरु-चेले झगड़ पड़े। इस असहिष्णुताकी एक चपेटसे सब बावले हो गये। किसे कोई क्या कहे? कुएँमें भाँग पड़ी, कौन समझाये? सबके हृदयमें, मस्तिष्कमें, बोल-चालमें, प्रवृत्तिमें, व्यवहारमें असहिष्णुता छा गयी। आश्चर्य है कि इसके ताण्डव नृत्य तथा कुफलके दुष्परिणामको देखकर भी हम चौकन्ने नहीं होते, जाग्रत् नहीं होते, विचार नहीं करते कि आखिर यह क्यों? चन्द दिनोंके मेहमान हम सब, फिर जीवनको अशान्ति और कलहका अड्डा एवं साम्राज्य क्यों बनायें? अमृतकी जगह विष क्यों घोलें? प्रेम और आनन्दका मजा क्यों न लूटें?

विचार-भेद प्रकृतिका अटल नियम है। कभी ऐसा युग नहीं आया कि सबके विचार एक-से हो गये हों; क्योंकि सबमें अपना व्यक्तित्व है, चैतन्यकी छटा सबमें अलग-अलग छिटक रही है। धर्म सबके अलग-अलग हैं, प्रवृत्ति भिन्न-भिन्न है तो परिणाम भी भिन्न होंगे। पर याद रखिये, इन सब विविधताओंमें समानता भी है, भेदमें भी अभेद है, अनेकतामें एकता है। अशान्तिमें शान्ति भी है। विरोधमें मेल भी है, वैमनस्यमें साम्य भी है। हर रोगका इलाज है, पर हमने भेदको ही बढ़ाया, अनेकताको ही आगे किया, छोटी-छोटी बातोंको बड़ा मान लिया। इसलिये हम सहिष्णुताका गुण छोड़ बैठे, असहिष्णुताके मिटानेका यही इलाज है, यही रामबाण औषध है कि हम समत्वकी ओर आयें और अभेदको बढ़ायें। विरोधीको भी अपना समझें। यदि कोई भाई—हमारा आत्मीय किसी गलत रास्तेपर चला गया है तो हम उसका अनुसरण न करें, हम भी भटक न जायँ, अपितु अपने सद्व्यवहारके द्वारा उसे रास्तेपर लायें। वह गलती कर रहा है तो हम उसे न दोहरायें।

अहिंसा और आत्मीयता हमें भेद-बुद्धिसे खींचकर अभेद-वृत्ति तथा समन्वयकी ओर आगे बढ़ाती है। प्राणिमात्रमें अपनेपनका अनुभव करना, उसके कष्टको अपना कष्ट मानना—यही अहिंसाकी मूल भित्ति है और विभिन्न विचारोंसे एकताका सूत्र खोलना, समन्वयका रास्ता ढूँढ़ निकालना—यही अनेकान्त है। सहिष्णुता इन दोनोंके मूलमें काम कर रही है। विरोधीके विचारोंको हम शान्तिसे सुनें, समझें, उसके दृष्टि-बिन्दुको पकड़ लें, विचार-भेदका कारण ढूँढ़ निकालें और कोई हमें कष्ट देता है तो हम धैर्य रखें, उसे सह लें, पर प्रतिरोधकी भावना और वृत्ति न पैदा होने दें। यही सहिष्णुता है, यही अहिंसा है, अनेकान्त है, चाहे क्षमा कहिये, चाहे धैर्य कहिये, चाहे शान्ति कहिये, चाहे समता कहिये—ये सभी सहिष्णुताके ही अपर नाम हैं।

विचार-भेद हैं और रहेंगे। हमें इन मत-भेदोंसे मन-भेद नहीं करना है। कोई भाई हमें कुछ कटु वाक्य कहता है या मार-पीट भी कर देता है तो उस अज्ञानी बन्धुके प्रति हमारा करुणाभाव हो। हमारे हृदयमें क्रोध और द्वेषकी ज्वाला न भड़के, प्रतिरोधकी भावना न जगे। विरोधका डिंडिमनाद न बजे, तब समझिये कि सहिष्णुताका पहला पाठ आप सीख चुके हैं। अभी इसके आगे एक और पाठ है, वह है शत्रुको भी मित्र मानना, कष्टदाताको भी सहायक मानना। मरणान्त कष्ट देनेवालेका भी उपकार मानकर उसके उद्धार करनेकी भावना एवं प्रवृत्तिको न मिटने देना।

'जो तोकूँ काँटा बुवै, ताहि बोय तू फूल।'

साधारण मनुष्योंकी पहली स्टेज है—'विरोधीके प्रति विरोधी भावना,' 'विरोधी भावना,' 'जैसेको तैसा,' 'शठं प्रति शाठ्यम्।'

उनके विचारमें या नीतिमें यह तर्क होता है कि हम किसीकी क्यों सहें? सहता वह है जो निर्बल है। ताकत होते हुए भी जो आक्रमणका प्रतीकार नहीं करता, कोई मारनेको आये तो उसको मारनेके लिये सामने नहीं जाता, कोई अपनी बुराई करे तो उसको चुपचाप सह लेना, वे इसे कमजोरी समझते हैं और व्यवहारमें उनकी मान्यताके अनुसार आपत्ति आती है, दुष्टता बढ़ती है, अनीति पनपती

है और भले आदमियोंका जीवन खतरेमें पड़ जाता है। इसीलिये दण्ड-व्यवस्था एवं कानून बने हैं।

दूसरा स्तर है कि हम अपनेको सम्हाले रहें। दूसरा गलती करता है तो हम गलती क्यों करें? एक व्यक्ति क्रोध करता है, हम आग-बबूला क्यों हों, जबकि हम मानते हैं कि क्रोध बुरा है। किसीको कष्ट देना पाप है, तो हम उस बुराईको, पापको क्यों अपनायें? एक व्यक्ति अज्ञानसे या स्वार्थसे कुछ अनुचित कर बैठता है तो दूसरा भी वही बर्ताव करे, इसमें अच्छाई क्या है? बड़प्पन क्या है? इसीलिये हम समभाव रखें। दोषसे अपनेको बचाये रखें। कोई व्यक्ति हमें कुछ अनुचित कहता है, हमारा दोष प्रकट करता है तो उसके कारणका अनुसन्धान करें और यदि वास्तवमें हमारी कुछ गलती है तो उसका सुधार करें। यदि हम निर्दोष हैं और विरोधी व्यक्ति भ्रम या अज्ञानसे गलती करता है तो उसे उसका भान करा दें। इसपर भी वह नहीं मानता है तो उदासीन हो जायँ और उपेक्षा कर दें। इसपर भी वह नहीं मानता है तो उसके प्रति मनमें द्वेष, घृणा, उसका बुरा करनेका भाव और उसके-जैसी भावना न रखें।

इससे ऊँचा स्तर वह है जिसमें कोई विरोधी रहता ही नहीं। सबमें एक ही ब्रह्मका या ईशका निवास है। कोई पराया नहीं; सबमें वही भगवान् बस रहा है जो कि हममें है। वहाँ ऊँच-नीचकी, भेद-भावकी दीवारें मिट जाती हैं। सारा जगत् ब्रह्ममय, परमात्म-स्वरूप या अपना ही रूप दिखायी देता है। इस अवस्थामें असहिष्णुताका प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरे स्टेजतक ही उसकी आवश्यकता है। पहलेके लिये तो विशेष है। हमारे महापुरुषोंको कितने कष्ट मिले, पर सबको सहकर ही वे बड़े बने। हम भी उन्हींकी संतान हैं। उनका अनुसरणकर सहनशील, धीर और गम्भीर बनें। सारा जड़-चेतन जगत् हमें सहिष्णुताका ही पाठ पढ़ा रहा है। पृथ्वी हमें संदेश दे रही है कि देखो मैं कितनी सहिष्णु हूँ।

नाना प्रकारके प्राणी नाना प्रकारके कष्ट मुझे देते हैं, मैं सब सह लेती हूँ, हर एकका उपकार ही करती हूँ, अपकार नहीं। विरोध करना मेरा धर्म नहीं, मैं सबकी माता जो हूँ। बच्चा बहुत बार जाने-अनजानेमें नुकसान कर देता है, पर माँ उन सबको सह लेती है। उसका प्रेम अनन्त है, असीम है। वह यदि उसको डाँटती है, मारती है, तो उसके हितके लिये ही। पुत्र कुपुत्र हो जाय पर माता कुमाता कभी नहीं होती। नारी भी सहिष्णुताकी मूर्ति है। वह घरवालोंके लिये, बाहरके लोगोंके दिये हुए भी कष्ट सहती जाती है। हम इन सबसे सहिष्णुताका सुन्दर पाठ ग्रहणकर अपने जीवनको आनन्दमय बनायें। यही मंगलमय कामना है। सहिष्णुताको अपनाकर शान्ति लाभ करें और उन्नत बनें।

'हरि भज बन्दे आठों याम'

(श्रीगोपालजी भारतीय)

हरि भज बन्दे आठों याम।
जासु कृपा पायो नर जीवन, सुखद सफल अभिराम।
ताहि बिसारि धनादि मान-मद, फँसे लोभ-रतिकाम॥
हरि भज० ....॥

यह जग कलिमल ग्रस्त भयो है, अघटन घट दिन-रैन।
रे नर-पामर तुच्छ स्वार्थ रत, भूल्यो करुणाऐन॥
अब तो चेत समझ नरतन गति, जाको मृत्यु विराम।
हरि भज० ....॥

कर शुभ कर्म, धर्म यह तेरो, कर तू पर उपकार।
सुत-वित-नारि सम्हार मानकर प्रभु को यह परिवार॥
तू माली, मालिक हैं हरिजू, जप तू यह हरिनाम।
हरि भज० ....॥

नट-नर्तक अरु डोरी मरकट,सम सारा संसार।
कर्म योनि है मानव जीवन, मत जाये तू हार॥
अब तो पकड़ भगति पथ अनुपम, गह हरि चरण ललाम।
हरि भज० ....॥

साधकोंके प्रति—

['वासुदेवः सर्वम्']

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

'वासुदेव ही सब कुछ हैं, वासुदेवके सिवा अन्य कुछ है ही नहीं।' इस तथ्यका जितना भी मनन हो, जितना भी इसपर विचार किया जाय, उतना ही उत्तम है। सभी साधन अन्ततः इसी परम साधनमें गतार्थ हो जाते हैं। वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है, जो सर्वत्र वासुदेव-ही-वासुदेव देखता है। जिस जीवनमें यह बात निश्चित हो गयी, वही अन्तिम जीवन है—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

(गीता ७। १९)

हमें इस विषयपर बारंबार विचार करना चाहिये।

'उद्धव-गीता'के उन्तीसवें अध्यायमें इसी परम साधनाका संकेत है और इसीको वहाँ 'मृत्युंजययोग'के नामसे कहा गया है। उस स्थितिके बाद फिर मृत्यु नहीं होती। उक्त प्रसंगमें कहा गया है कि यह चर-अचर जो कुछ दीखता है, वह भगवत्स्वरूप है। स्वयं भगवान् ही नाना रूपोंमें खेल रहे हैं। भगवान्‌के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। श्रीमद्भागवतमें तो यहाँतक निर्देश किया गया है कि घृणित पशु—ऊँट, गधे आदिमें भी भगवान्‌को देखकर, लोक-लज्जा छोड़ उन्हें साष्टांग दण्डवत्-प्रणाम करे। इसपर घरवाले, अड़ोसी-पड़ोसी दिल्लगी उड़ायें, हँसें तो हँसने दे—

विसृज्य स्मयमानान् स्वान् दृशं व्रीडां च दैहिकीम्।
प्रणमेद् दण्डवद् भूमावाश्वचाण्डालगोखरम्॥

(श्रीमद्भा० ११। २९। १६)

अपनी हँसी करनेवाले स्वजनोंको, 'मैं अच्छा हूँ, वह बुरा है' ऐसी देह-दृष्टिको तथा लोक-लज्जाको छोड़कर कुत्ते, चाण्डाल, गौ और गधेको भी पृथ्वीपर गिरकर साष्टांग प्रणाम करे।

यह आज्ञा वास्तवमें उसके लिये है, जो मनसे समस्त संसारको भगवत्स्वरूप मान चुका है। वहाँ लोक-लज्जा-जैसी कोई वस्तु ही नहीं रह जाती। उसकी दृष्टिमें जब 'लोक' ही नहीं रहता, तब लोक-लाज कैसे रहेगी? वहाँ तो केवल वासुदेव ही रह जाते हैं। समस्त लोक-परलोक उस एक (वासुदेव)-में ही समा जाते हैं। इसी भावनाको दृढ़ करनेके लिये अगले श्लोकमें भगवान्‌ने कहा है—

यावत् सर्वेषु भूतेषु मद्भावो नोपजायते।
तावदेवमुपासीत वाङ्मनःकायवृत्तिभिः॥

(श्रीमद्भा० ११। २९। १७)

'जबतक सम्पूर्ण प्राणियोंमें मेरी भावना—भगवद्भावना न हो जाय, तबतक उक्त प्रकारसे मन, वाणी और शरीरके समस्त व्यापारोंद्वारा मेरी उपासना करता रहे।' आरम्भमें आवश्यकता मनमें यह अनुभव करनेकी है कि जितने भी स्थावर-जंगम प्राणी हैं, वे सभी एकमात्र भगवान्‌के स्वरूप हैं। श्रीभगवान् कहते हैं—

मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥

(गीता ७। ७)

'मेरे अतिरिक्त संसारमें अन्य कुछ है ही नहीं। जिस प्रकार सूतकी मालामें सूतकी मणियाँ गुँथी हुई हों, उसी प्रकार यह सम्पूर्ण संसार मुझमें गुँथा हुआ है।' मणियाँ दीखती तो हैं अलग-अलग, पर है सब कुछ वास्तवमें सूत-ही-सूत। इसी प्रकार सारा संसार मुझमें गुँथा हुआ है। मैं-ही-मैं हूँ। अन्य कुछ है ही नहीं। समस्त अनेकताओंमें एकता, समस्त भेदोंमें एक अखण्ड अभेद—

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्॥

(गीता १८। २०)

'जिस ज्ञानसे मनुष्य पृथक्-पृथक् सब भूतोंमें एक अविनाशी परमात्माको विभागरहित, समभावसे स्थित देखता है, उस ज्ञानको सात्त्विक जानना चाहिये।'

अलग-अलग दीखनेवाले समस्त चर-अचर पदार्थोंमें एक अविनाशी परमात्मा ही अविभक्त रूपसे व्याप्त हैं—इस भावसे देखनेवालेको इस बातका अनुभव होता है कि

भगवान्‌के सिवा अन्य कुछ है ही नहीं। हमें यह देखना और अनुभव करना चाहिये कि सब कुछ परमात्मा हैं। इसी सिद्धान्तके अनुसार व्यवहार भी होना चाहिये। जब यह बात मनमें दृढ़ रूपसे जम जायगी कि सभी रूपोंमें भगवान् ही हमारे सामने आ रहे हैं तो फिर हमारे आनन्दका पार न रहेगा। यदि नाटकमें हमारे पिता ही हमारे शत्रुका स्वाँग धरकर मंचपर आ जायँ तो वहाँ खेलमें शत्रुका-सा व्यवहार करते हुए भी यह ध्यान बराबर बना रहेगा कि ये मेरे पूज्य पिता हैं। इसी प्रकार जब हम जान जायँ कि इस स्वाँगमें परमात्मा ही आये हुए हैं—वे ही हमारे साथ चल-फिर रहे हैं, हँस-खेल रहे हैं तो किसीके प्रति दुर्व्यवहार कैसे होगा? वहाँ चाहे भगवान्‌की आज्ञासे खेलके लिये उन्हींके आज्ञानुसार उनसे लड़ना भी पड़े, तथापि मनमें उनके प्रति भक्ति बनी रहेगी। इस प्रकार मनसे देखना चाहिये कि सबमें भगवान् ही हैं।

जिन्हें हम छोटा मानते हैं, सर्वप्रथम उन्हींमें भगवान्‌को देखना आरम्भ करना चाहिये। अपनेसे बड़ोंके प्रति तो हमारे मनमें प्राय: अनादरका भाव नहीं होता, पर जो पदमें हमसे छोटे और व्यवहारमें नीचे हैं—जैसे हमारा नौकर आदि, वहाँ मानना चाहिये कि इस रूपमें हमारे भगवान् ही हैं। भीतरसे हम यह पहचानते रहें, देखते रहें, अनुभव करते रहें कि ये भगवान् ही हैं; क्योंकि इस जगत्‌में उनके सिवा अन्य कुछ है ही नहीं, पर बाहरसे भगवान्‌की आज्ञा मानकर जो स्वाँग हो, उसीके अनुकूल बर्ताव करें।

एक बहुरूपियेके ही ये नाना वेश हैं। वे ही हमारे प्यारे प्रभु माता, पिता, स्त्री, पुत्र, बन्धु, नौकर, स्वामी आदिके वेशमें आते हैं। इन सब भेदोंमें अभेद हैं। अत: सभीको देखकर भगवान्‌के साक्षात्कारका आनन्द लूटते हुए मन-ही-मन प्रणाम करना चाहिये—

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

(रा०च०मा० १।८।२)

जब सारा संसार सीताराममय दीखने लगेगा, तब प्रणामकी मधुर प्रक्रिया स्वयं होने लगेगी; जब सदा-सर्वदा तथा सर्वत्र अपने प्राणनाथ ही दीखने लगेंगे, तब उन्हें देखते ही आँखें स्वयं झुक जायँगी। श्रीमद्भागवत (११।२।४१)-में कहा गया है—

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत् किं च भूतं प्रणमेदनन्यः॥

'आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, नक्षत्र, प्राणी, दिशाएँ, वृक्ष, नदियाँ और समुद्र आदि जो कुछ भी हैं, वे सब भगवान् श्रीहरिके शरीर ही हैं, अत: सबको अनन्य भावसे प्रणाम करे।'

सन्त एकनाथजीने तो अपने नौकरके रूपमें आये हुए भगवान्‌को पहचान लिया था। वह 'श्रीखण्ड्या' केवल एकनाथजीके घरमें ही नहीं था, वह तो हम सभीके घरमें छिपा हुआ है। हम सभीके घर भगवान् हमारे नौकरके वेशमें, स्त्री-पुत्र-माता-पिताके रूपमें आये हुए हैं, किंतु हम उन्हें पहचानते कहाँ हैं? हमारी दृष्टि कितनी संकुचित है, इसका एक उदाहरण प्रस्तुत है—

एक सज्जन राजस्थान जानेके लिये कलकत्तासे दिल्लीके लिये रवाना हुए। उन्होंने अपने पुत्रको, जो बम्बई था, अपने साथ ही राजस्थान चलनेके लिये दिल्ली बुलाया। संयोगसे वह उनसे पहले ही दिल्ली पहुँचकर एक धर्मशालामें ठहर गया। बादमें वे सज्जन भी उसी धर्मशालामें जा पहुँचे और पुत्रके बगलवाले कमरेमें ठहरे। रात्रिका समय था, दोनों एक-दूसरेके विषयमें कुछ जान न सके। लड़का अस्वस्थ था। अत्यधिक शीत होनेसे उसके श्वासरोगने जोर पकड़ लिया। उसकी खाँसीके कारण उक्त सज्जनको नींद नहीं आ रही थी। उन्होंने धर्मशालाके व्यवस्थापकसे शिकायत की—'मेरे बगलवाले कमरेमें जो व्यक्ति ठहरा है, वह बहुत बुरी तरह खाँसता है, इस प्रकारके रोगियोंको धर्मशालामें ठहरना दूसरोंके लिये खतरनाक सिद्ध हो सकता है; अत: उसे तुरन्त धर्मशालासे बाहर निकालिये, अन्यथा.........' उन सज्जनके डरसे व्यवस्थापकने उसे धर्मशालासे निकाल दिया। वह बेचारा बाहर पटरीपर ही रातभर पड़ा-पड़ा कराहता रहा। शीतके कारण उसका कष्ट अत्यधिक बढ़ गया था। सबेरे उक्त सज्जन जब बाहर आये तो उनकी दृष्टि उस अस्वस्थ लड़केपर गयी, जिसे उन्होंने रातमें धर्मशालासे निकलवा दिया था। उसे पहचानकर वे बड़े दुखी हुए, रोने लगे।

मेरा घर, मेरी स्त्री, मेरा बच्चा—बस, यहींतक हमारी पहचान है; परंतु जब हम अपने हरिको इन सारे स्वाँगोंमें

पहचान लेंगे और सारे संसारमें उन्हीं 'एक'को देखते हुए सर्वत्र उन्हींका दर्शन, स्पर्श, वन्दन करने लगेंगे, तब हमारे आनन्दकी कोई सीमा नहीं रहेगी। हमारे लिये संसारमें प्रतिकूलता-जैसी वस्तु ही लुप्त हो जायगी।

यह प्रकृति परमात्माकी दासी है। जहाँ यह निश्चय हो जायगा कि प्रकृति नहीं, यह सब परमात्मा हैं—हरि हैं, वहाँ सब कुछ 'अपना', अपने स्वामीका हो जायगा। वहाँ प्रतिकूलता रहेगी ही क्यों? अग्नि प्रह्लादको जला न सकी। अग्निके प्रति भी प्रह्लादके मनमें यही भाव था कि ये परमात्मा ही हैं—जब सच्चे रूपको स्वाँगके भीतर पहचान लिया गया तो परमात्मा भला प्रह्लादको कैसे जलाते? जब भक्त यह जान गया कि हमारा ही पिता सिंहके रूपमें आया है तो वह उनसे क्यों डरता? यदि हम जान जायँ कि यह सारा संसार परमात्मा है तो फिर वैर किससे होगा, घृणा किससे होगी, क्रोध किसपर होगा?—

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥

(रा०च०मा० ७। ११२ ख)

जब सभी हमारे प्रभु हैं तो हमारेद्वारा सभी सेवनीय हैं। इस प्रकारका जिसका अनुभव हो गया, वही 'महात्मा' है। उसके लिये सारे कर्तव्य उस एक कर्तव्यमें, सारी शक्ति उस एक शक्तिमें, सारा ज्ञान उस एक ज्ञानमें समा जायगा। भक्ति तो सदा उमड़ी रहेगी। जो सर्वत्र वासुदेवको ही देखता है, वही सच्चा ज्ञानी, वही सच्चा भक्त और वही सच्चा कर्मयोगी है। 'सब कुछ वासुदेव ही हैं' ऐसा अनुभव करनेवाला पुरुष ही सर्वश्रेष्ठ है।

श्रीमद्भागवत, तीसरे स्कन्धके उन्तीसवें अध्यायमें यह प्रसंग आता है कि जो पुरुष केवल मूर्तिको भगवान् मानकर पूजा तो भलीभाँति करता है, पर समस्त भूतोंमें भगवान् हैं—ऐसा नहीं मानता अर्थात् जो इस मूर्तिमें है, वही समस्त सजीव-निर्जीव मूर्तियोंमें अखण्ड रूपसे है, ऐसा नहीं समझता, वह भगवान्‌का अपमान करनेवाला महान् अपराधी है। यह जगत् हरि ही है—हरिके सिवा कुछ है ही नहीं—'**हरिरेव जगज्जगदेव हरिः**'। पाँच मिनट भी यदि 'सब कुछ वासुदेवमय है', ऐसा भाव दृढ़ और अखण्ड रखें तो जीवनमें अपूर्व शान्ति और प्रसन्नता प्राप्त होगी। सामने जो कुछ आये, वह भगवान् ही हैं, यह स्मरण होते ही आनन्दका समुद्र उमड़ पड़ेगा और सारे पाप-ताप उसमें बह जायँगे। यदि सदाके लिये यह भाव दृढ़ हो गया, पाँच मिनटका यह आनन्द अखण्ड हो गया तो फिर जीवनका परम फल ही प्राप्त हो गया। जो कुछ भी कर्म हो, जिस किसीसे भी व्यवहार हो भगवान्‌को ही देख-समझकर। भगवान्‌को प्रतिपल और प्रतिव्यक्तिमें देखना न भूलें।

इसका श्रीगणेश अपने घरसे ही करें। बड़े भी सबको भगवान्‌का रूप मानकर प्रणाम करें, आदर करें। हाँ, अपने-अपने स्वाँगके अनुसार कर्म करें, कर्तव्यच्युत न हों, मर्यादा नष्ट न होने पाये। सब कुछ परमात्मा है—यह भाव दृढ़ हो गया तो दुर्भाव किससे और कैसे होगा? अपनोंके साथ हम दुर्व्यवहार नहीं करते, जब सभी अपने (हरि) हैं, फिर दुर्व्यवहार कैसे हो सकेगा? जहाँ अपना-परायाका भाव नहीं है, वहाँ दुःख कैसे रहेगा? वहाँ तो सर्वदा शान्ति बनी रहेगी।

यदि कभी जगत्‌में विश्वबन्धुत्वकी स्थापना होगी तो इस आत्मभावनासे ही होगी न कि बाह्य—कृत्रिम एकतासे। क्या परिवार, क्या जाति, क्या राष्ट्र—सभी स्थानोंमें हमारे स्वार्थपूर्ण संकुचित भाव ही युद्ध या कलहके कारण हैं। जहाँ सारा विश्व हमारा परिवार हो जाता है, वहाँ फिर कैसा संघर्ष? विश्व-बन्धुत्व हो कैसे? ऊपर-ऊपरसे निःशस्त्रीकरण-सम्मेलन (Disarmament conferences) और शान्ति-सम्मेलन (Peace conference) होते हैं, पर भीतर-भीतर युद्धकी तैयारियाँ होती रहती हैं। भीतर विश्वास नहीं है। जब हम यह जान लेंगे कि भगवान्‌का ही स्वरूप सारा विश्व है, तब स्वतः हथियार रख दिये जायँगे। जबतक हमारे मनमें यह सत्य नहीं उतरेगा कि सारा विश्व परमात्माका स्वरूप है, तबतक हमें शान्ति नहीं प्राप्त होगी।

अतएव दिनभरमें जो भी हमारे सामने आये, उसमें भगवान्‌का स्वरूप देखते हुए उसके साथ व्यवहार करें। काम तो बस, स्मरण रखनेका है। स्मरणसे यह बात दृढ़ होगी, फिर अनुभवमें आ जायगी। फिर तो प्रतिपल श्रीहरिके ही दर्शन होते रहेंगे। मन-ही-मन यह मन्त्र दोहराते रहें—

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

(रा०च०मा० १।८।२)

'सीता सहित अनुज प्रभु आवत'

(श्रीअर्जुनलालजी बंसल)

नन्दिग्राम ही नाम है, उस दिव्य स्थलका, जो अयोध्यानगरीकी सीमाके बाहर हरियालीसे ओत-प्रोत, वनों और उपवनोंके मध्य जहाँ पृथ्वीके गर्भमें घास-फूससे ढकी एक कुटिया बनी है। इसके एक भागमें बने भव्य सिंहासनपर भगवान् श्रीरामकी चरणपादुकाएँ विराजमान हैं। भाँति-भाँतिके रंग-बिरंगे पुष्पोंकी सुगन्धसे सारा वातावरण मनमोहक बना हुआ है।

नन्दिग्रामकी इसी पर्णकुटीमें भरतजी निवास करने लगे। शीशपर जटाजूट और शरीरपर वल्कल वस्त्र धारणकर सर्वप्रकारसे ऋषिधर्मका पालन करने लगे—

नंदिगावँ करि परन कुटीरा। कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा॥
जटाजूट सिर मुनिपट धारी। महि खनि कुस साँथरी सँवारी॥
असन बसन बासन ब्रत नेमा। करत कठिन रिषिधरम सप्रेमा॥

(रा०च०मा० २।३२४।२—४)

श्रीभरतजी प्रेम और श्रद्धा-भावसे प्रभुकी चरण-पादुकाओंकी नित्य पूजाकर उन्हींसे आज्ञा प्राप्तकर राज्यके कार्यका संचालन करते हैं—

नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदय समाति।
मागि मागि आयसु करत राज काज बहु भाँति॥

(रा०च०मा० २।३२५)

एक दिनकी बात हैं, भगवान् श्रीरामकी चरण-पादुकाओंके समक्ष प्रज्ज्वलित दीपककी धीमी रोशनीमें शीश झुकाये श्रीभरतजी उनकी पूजामें लीन थे, नेत्रोंकी पलकोंने झुककर बाहरी संसारसे सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। कोई नहीं जानता था कि इस समय भाव-समाधिमें निमग्न नन्दिग्रामका यह तपस्वी प्रभुकी लीलाके दर्शन कर रहा है। उन्होंने देखा, श्रीरामजीने रावणका संहारकर लंकापर विजय प्राप्त कर ली है। अब वे श्रीजानकीजी और भाई लक्ष्मणसहित उच्चासनपर विराजमान हैं। विभीषणजीका राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ, परंतु इस अवसरपर भी प्रभु उदास बैठे हैं। विभीषणजीद्वारा कारण पूछनेपर प्रभुने कहा, 'हे लंकानरेश! आज मेरी वनवासकी अवधि पूर्ण होनेका अन्तिम दिन है, इस समय मुझे भरतकी चिन्ता सता रही है, वह अयोध्याके प्रवेशद्वारपर खड़ा मेरी प्रतीक्षा कर रहा होगा, मुझे अब अविलम्ब अयोध्या पहुँचना ही होगा। प्रभुके संकल्पमात्रसे ही कुबेरका पुष्पक विमान प्रभुके समीप उतर आया। श्रीजानकीजी, भाई लक्ष्मण और अपने विशिष्ट सेवकोंके साथ भगवान् श्रीराम उस विमानपर विराजमान हो अयोध्याकी ओर चल पड़े। इस अवसरपर,

परम सुखद चलि त्रिबिध बयारी। सागर सर सरि निर्मल बारी॥
सगुन होहिं सुंदर चहुँ पासा। मन प्रसन्न निर्मल नभ आसा॥

शीतल, मन्द, सुगन्धित वायु बहने लगी; सागर, सरोवरों और नदियोंका जल स्वच्छ हो गया। सृष्टिमें चारों ओर शुभ शकुन दिखायी देने लगे। उधर आकाशमार्गसे चलते-चलते श्रीरामने जानकीजीको अपनी लीलास्थलीके दर्शन कराये। नीचे देखो सीते, यह वह रणभूमि है, जहाँ लक्ष्मणने देवताओं और मुनियोंको दु:ख देनेवाले, इन्द्रको जीतनेवाले मेघनाथको मारा था, उधर देखो सीते, यहाँ रावण और कुम्भकर्ण मारे गये, उधर निहारो जानकी, यही है वह सेतु, जिसका निर्माणकर वानर-भालुओंने हमें और हमारी सेनाको सागर पारकर लंकामें प्रवेश करनेका मार्ग सुलभ कराया। इसीके समीप मैंने सुखके धाम श्रीशिवजीकी स्थापना की—

इहाँ सेतु बाँध्यों अरु थापेउँ सिव सुख धाम।
सीता सहित कृपानिधि संभुहि कीन्ह प्रनाम॥

(रा०च०मा० ६।११९ क)

इस प्रकार मार्गके समस्त लीलास्थल और उनके नाम बताते हुए श्रीरामने भारद्वाजमुनिके आश्रमपर विमानको उतरनेका आदेश दिया। यहाँपर विमानसे बाहर आकर उन्होंने भरतजीको अपने आगमनका समाचार देने हनुमान्जीको नन्दिग्राम भेज दिया और स्वयं त्रिवेणीमें स्नानकर भारद्वाजजीसे मिलने चले गये।

उधर कुछ ही समयमें हनुमान्जी भरतजीकी कुटियापर जा पहुँचे। धीरेसे कुटियाका द्वार खोलकर जैसे ही प्रवेश किया, उन्होंने देखा कृशकाय शरीरके

स्वामी नन्दिग्रामके यशस्वी, तपस्वी श्रीभरतजी भगवान् श्रीरामकी चरणपादुकाओंको पुष्प अर्पितकर उनकी पूजामें लीन हैं।

प्रभु श्रीरामके विरहरूपी सागरमें भरतजीका हृदय डूबने लगा था। उचित अवसर जानकर ब्राह्मणका वेष हनुमान्‌जी धारणकर भरतजीके सामने ऐसे प्रकट हुए मानों नावरूपमें उन्हें जीवनदान देने आये हैं।

राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत॥

(रा०च०मा० २।१ क)

हनुमान्‌जीने भरतजीको शीशपर जटाओंका मुकुट बनाये, वाणीसे रामनाम जपते, नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी जलधारा बहाते हुए कुशके आसनपर विराजमान देखा—

बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात॥

सहसा ही,

भरत नयन भुज दच्छिन फरकत बारहिं बार।
जानि सगुन मन हरष अति लागे करन बिचार॥

भरतजीका दाहिना नेत्र और दाहिनी भुजा फड़कने लगी। इसे शुभ शकुन मानकर भरतजी हर्षित हो उठे।

हर्षके इन्हीं क्षणोंमें सहसा ही हनुमान्‌जी विप्रवेषमें भरतजीके सम्मुख प्रकट होकर मधुर वाणीमें कहने लगे—

जासु बिरहँ सोचहु दिन राती। रटहु निरंतर गुन गन पाँती॥
रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता।आयउ कुसल देव मुनि त्राता॥

हे भरतजी! आप रात-दिन जिनके विरहमें व्याकुल रहते हो और निरन्तर जिनका गुणगान करते हो, देव-समाज और ऋषि-मुनियोंके रक्षक रघुकुलतिलक भगवान् श्रीराम कुशलपूर्वक आ गये हैं।

ऐसे मधुर वचन सुनकर भरतजीने पूछा,

को तुम्ह तात कहाँ ते आए। मोहि परम प्रिय बचन सुनाए॥

हे विप्रवर, आप कौन हैं? और कहाँसे आये हैं? भरतजीके मुखसे ऐसे प्रिय वचन सुनकर विप्रवेषधारी देवतुल्य उस महापुरुषने कहा, मैं पवनदेवका पुत्र जातिसे वानर और नामसे हनुमान् हूँ। मैं प्रभु श्रीरामका सेवक हूँ। इतना सुनते ही भरतजीने बड़े आदरसे उन्हें अपने हृदयसे लगा लिया—

मारुत सुत मैं कपि हनुमाना। नामु मोर सुनु कृपानिधाना॥
दीनबंधु रघुपति कर किंकर। सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर॥
मिलत प्रेम नहिं हृदयँ समाता। नयन स्रवत जल पुलकित गाता॥

भरतजीने प्रभु श्रीराम, माता स्वरूपा श्रीजानकी और भाई लक्ष्मणकी कुशल-क्षेम जानकर हनुमान्‌जीसे प्रश्न किया, 'हे हनुमान्‌जी! क्या मेरे स्वामी अपने इस दासका स्मरण करते हैं?' हनुमान्‌जीने कहा—

राम प्रान प्रिय नाथ तुम्ह सत्य बचन मम तात।
पुनि पुनि मिलत भरत सुनि हरष न हृदयँ समात॥

हे भरतजी! आप तो प्रभु श्रीरामको प्राणोंके समान प्रिय हैं, मेरा वचन सदैव सत्य है। यह सुनकर भरतजी हर्षित हो उठे।

यह वार्तालाप पूर्ण होनेपर भरतजीको नमनकर हनुमान्‌जी प्रभु श्रीरामके पास लौट गये। उनके जानेके बाद भरतजी पुनः भाव-समाधिमें लीन हो गये।

संयोगसे उसी समय हाथोंमें आरतीका थाल लिये श्रीभरतजीकी जीवन-सहचरि माण्डवीजीने कुटीमें प्रवेश किया और नित्यकी भाँति सिंहासनपर विराजमान प्रभु श्रीरामकी चरणपादुकाओंकी पूजा-अर्चनाकर जैसे ही अपने पतिके चरणस्पर्श किये, वे भाव-समाधिसे बाहर आये। अपनी पत्नीको समीप देख भरतजीके नेत्रोंसे हर्षमिश्रित अश्रुधारा बहने लगी, जिसे देख माण्डवीजी अवाक् रह गयीं। आज चौदह वर्षके पश्चात् उन्होंने अपने पतिके मुखपर विषादके स्थानपर मुसकान देखी थी। इससे पूर्व कि माण्डवीजी इसका कारण पूछतीं, भरतजीने श्रीरामजीकी चरणपादुकाओंकी ओर संकेत कर कहा—आज मेरे प्रभु अयोध्या आ रहे हैं माण्डवी! यदि तुम्हें विश्वास नहीं हो रहा हो तो देखो, चौदह वर्षके पश्चात् आज प्रथम बार इस अँधेरी कुटियामें भगवान् सूर्यदेवकी स्वर्णिम किरणें प्रवेशकर प्रभुके आगमनका संकेत कर रही हैं। माण्डवीजीका विश्वास दृढ़ होते देख भरतजीने उनसे कहा, 'अब तुम शीघ्रतासे जाकर गुरु वसिष्ठ और राजमाताओंको यह सुखद समाचार सुना दो और हाँ, उर्मिलाको भी यह समाचार देनेमें तनिक भी विलम्ब न करना।' स्वीकृति-सूचक संकेतकर पतिके चरणोंमें प्रणाम करते हुए माण्डवीजी

जैसे ही कुटियासे बाहर आयीं, प्रकृतिका बदला हुआ स्वरूप देख आश्चर्यचकित रह गयीं। पूरा वन-क्षेत्र हरियालीसे शोभित हो गया, दूर गगनमें उड़ते हुए पक्षी कलरव करने लगे, हिरणोंकी टोलियाँ कुलाँचे भरती हुई दिखायी दीं। सरयूकी उत्ताल तरंगें अपने स्वामीके दर्शनोंको उतावली हो रही थीं। सूर्यदेवकी सतरंगी किरणें और अधिक तेजोमयी हो गयीं। हमारे प्रभु आ रहे हैं, आज हमारे प्रभु आ रहे हैं। ऐसा कहते-कहते माण्डवीजीने सर्वप्रथम गुरु वसिष्ठजीको यह शुभ समाचार सुनाया, तत्पश्चात् राजमहलमें प्रवेशकर तीनों माताओं और बहन उर्मिलाको यह सुखद समाचार कह सुनाया। इस समाचारको सुनकर पूरा राजमहल जीवन्त हो उठा।

अयोध्याके हृदय-सम्राट् श्रीराघवेन्द्रसरकारके आगमनका समाचार क्षणभरमें पूरी नगरीमें फैल गया। फलस्वरूप अयोध्या नगरीका विगत चौदह वर्षोंसे मरुस्थल-जैसा दृश्य आज वसन्त-ऋतुके सौन्दर्यका पर्याय बन गया। राजमहलमें राजमाताओंके साथ तीनों वधुएँ (माण्डवी, उर्मिला और श्रुतकीर्ति) सेवक और सेविकाएँ मुख्य द्वारपर आकर स्वागतहेतु खड़ी हो गयीं। नगरवासी नगरकी साज-सज्जामें जुट गये। अयोध्याके प्रवेशद्वारसे राजमहलतकका मार्ग मणिमुक्ताओंसे जड़े विशाल द्वारसे सुसज्जित कर दिया गया। पूरे राजपथको रंग-बिरंगे सुगन्धित पुष्पोंसे ढक दिया गया। अयोध्याकी नारियाँ अपने-अपने भवनके झरोखोंसे झाँकती हुई मंगल गीत गाने लगीं।

सहसा ही आकाशमें विमानकी ध्वनि सुनकर नगरमें कोलाहल मच गया, चारों ओर हर्षकी लहर फैल गयी। धीरे-धीरे वह पुष्पक विमान पृथ्वीपर उतर गया। प्रभु श्रीराम श्रीजानकीजी और भाई लक्ष्मणसहित विमानसे बाहर आये। वहाँ उपस्थित विशाल जनसमूहका अभिवादन स्वीकार करते हुए श्रीरामजीने नगरमें प्रवेश किया। मुख्य द्वारपर दोनों भाइयोंने महर्षि वसिष्ठजीके चरणोंमें साष्टांग प्रणाम किया, वसिष्ठजीने स्नेहवश दोनोंको अपने हृदयसे लगा लिया। श्रीजानकीजीने प्रणामकर महर्षिसे अखण्ड सौभाग्यवती होनेका आशीर्वाद प्राप्त किया।

अब प्रभु श्रीराम भाई भरतको देखनेके लिये लालायित हो उठे। भरतको अपने समीप ही तपस्वी वेषमें खड़े देख प्रभु विचलित हो उठे। भरतजी आगे आकर अपने आराध्यदेवके चरणोंमें झुक गये। श्रीरामने उन्हें अपने हाथोंसे ऊपर उठाकर हृदयसे लगा लिया। इस दिव्य मिलनके अवसरपर दोनोंकी आँखोंमें प्रेमाश्रु छलक आये। भरतजीने माता स्वरूप श्रीजानकीजीके चरण-स्पर्शकर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। तत्पश्चात् भाई लक्ष्मणको अपने गले लगाया, वहीं एक ओर खड़े शत्रुघ्नको श्रीजानकीजीने अपने पास बुलाकर पुत्रवत् स्नेह प्रदान किया।

अयोध्यावासियोंपर अपने प्रेमकी वर्षा करते हुए प्रभुकी दृष्टि जैसे ही राजमहलके द्वारपर खड़ी माताओंपर पड़ी, वे दौड़कर उनके चरणोंमें झुक गये। श्रीजानकीजी और लक्ष्मणजीने भी माताओंके चरणस्पर्शकर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। माताओंद्वारा स्वागत-सत्कारके पश्चात् सभीने भवनमें प्रवेश किया। वन-प्रवाससे लौटे श्रीराम, श्रीजानकीजी और लक्ष्मणजीको समस्त स्वजन घेरकर बैठ गये। वनके खट्टे-मीठे अनुभव सुनते-सुनाते शेष दिन और पूरी रात्रि व्यतीत हो गयी।

प्रातःकाल होते ही श्रीराम गुरुचरणोंमें प्रणाम करने गये। उन्होंने आशीर्वाद देते हुए कहा, 'हे रघुकुलभूषण! अब अयोध्याकी सूनी राजगद्दीको सुशोभित करनेका शुभ अवसर आ गया है।' अपने वचनको साकार करनेके उद्देश्यसे महर्षि वसिष्ठने शुभ घड़ी, शुभ दिन और शुभ समय देखकर श्रीरामजीके साथ श्रीजानकीजीको राजसिंहासनपर विराजमान कराया और सूर्यकुलकी परम्पराके अनुसार उन्होंने श्रीरामको तिलक लगाकर उनका राज्याभिषेक कर दिया। इस अवसरपर प्रभुद्वारा प्रदान की गयी चरण-पादुकाओंको उनके चरणोंमें धारण कराते हुए भरतजी कहने लगे, 'हे रघुकुलशिरोमणि! आपका राज्य आपके चरणोंमें समर्पित करते हुए मैं अपार आनन्दका अनुभव कर रहा हूँ।' पूरी अयोध्यानगरीमें हर्ष व्याप्त हो गया। आकाशसे देव-वधुओंने पारिजातके पुष्पोंकी वर्षा की। सन्ध्यासमय दीपोंकी मालासे समस्त नगरको सजाया गया, आज उन्हें उनका राजा जो मिला था।

'ढाई आखर प्रेमका'

(श्रीमती आशाजी गुप्ता)

बच्चोंकी दुनिया भी अनूठी ही होती है। विशेषरूपसे नन्हें शिशुओंकी! घरमें एक नन्हा मेहमान आया है। अभी कुछ ही महीनोंका तो हुआ है। एकदम मासूम और सीधा-सादा। बहुत आकर्षित करता है। सब उसके पास ही बैठे रहना चाहते हैं। हर समय उसकी मासूमियतमें जैसे डूब जाना चाहते हैं। उसके जैसे ही बन जाना चाहते हैं, ताकि उसको हमें स्वीकार करनेमें हमारे पास आनेमें कोई दिक्कत न हो। इधर-उधर जाते भी हैं तो ***'जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी पुनि जहाज पै आवै'*** की तरह बार-बार उसके ही पास लौटकर आ जाते हैं। वह भी कहता है कि मेरे पास बैठो! मुझसे बातें करो! मेरा ये करो! मेरा वो करो! मुझे कुछ गाकर सुनाओ! थोड़ा नाचकर दिखाओ! तोतली जबानमें कुछ बोलकर बताओ! मेरी आँखोंमें झाँककर देखो! और भी न जाने क्या-क्या कहता रहता है। अपने पास ही तो बिठाये रखता है अधिकांश समय, सारे दिन पूरे परिवारको व्यस्त रखता है ये नन्हा-सा जीव! आप कहेंगे कुछ महीनेका बच्चा कैसे बोल सकता है?

आप ठीक कह रहे हैं। वह बोलना नहीं जानता। वह हिन्दी, अंग्रेजी या अन्य कोई भाषा भी नहीं जानता। मैं कई भाषाएँ जानती हूँ, लेकिन इनमें-से वह कोई भाषा नहीं समझता। इसके बावजूद हम दोनों खूब बातें करते हैं। दिनभर ढेर सारी बातें करते हैं। हमारी अपनी विशेष भाषा है। रातको जब वह अपनी प्यारी माँके साथ सोनेके लिये जाता है तो हमारे 'शुभ रात्रि' या रूसीमें 'स्पाकोयनाय नोच्यी' कहनेपर ऐसे मुसकराता है, जैसे वह सभी भाषाएँ समझता है। जबतक आँखोंसे ओझल नहीं हो जाता, एकटक देखता ही रहता है। रातभरके लिये बिछुड़नेकी पीड़ा जैसे उसकी आँखोंसे प्रकट हो उठती है। हाँ, सचमुच वह सब बखूबी समझता है। यह वह भाषा है, जिसको पूरी दूनियाके वे लोग जो एक-दूसरेसे नितांत अपरिचित हैं और एक-दूसरेकी भाषा बिलकुल नहीं जानते, भी समझ सकते हैं।

भाषा क्या है? संदेशोंका आदान-प्रदान ही तो है। सुखद सन्देश मिलता है तो प्रसन्नता होती है। दुखद सन्देश असह्य होता है। मनको अवसादसे भर देता है। हमारा नन्हा मेहमान जब मुसकराता है तो हम सबके मनोंमें प्रसन्नताकी लहर दौड़ जाती है। सब कुछ भूलकर उसकी निश्छल मुसकराहटमें खो जाते हैं। जब वह किलकारियाँ मारता है तो उसके कहने ही क्या? जी चाहता है उसके साथ मिलकर हम भी शोर मचायें। लेकिन जब वह रो पड़ता है तो हम आँसू न बहाते हुए भी अन्दरसे भीग-से जाते हैं। जब वह कुछ देरके लिए ही सही चुप हो जाता है, मुसकराता नहीं है, किलकारियाँ नहीं मारता है, हाथ-पैर नहीं चलाता है तो बाकी सबकी मुसकराहटें गायब हो जाती हैं। सबके अन्दर कुछ खालीपन-सा भर जाता है। यह संवाद ही तो है। उसका रोना, हँसना, एकटक देखना और अन्य सभी क्रियाएँ संवाद ही तो हैं। अपूर्ण नहीं पूर्ण संवाद। संवाद है तो माध्यम भी होगा और भाषा भी होगी। भाषा भी है और सदियों-सहस्राब्दियोंसे भी पुरानी भाषा है। मनुष्य ही नहीं, पूरी प्रकृतिकी भाषा है। कोई और न समझे तो क्या किया जाय? कबीर जानते थे इस भाषाको। तभी ***'ढाई आखर प्रेमका'*** उनके लिए दुनियाकी हर भाषा और दुनियाके हर ज्ञानसे ऊपर रहा। इस भाषाके लिये किसी लिपिकी, किसी ज्ञानकी जरूरत ही नहीं। न कागज-कलमकी ही।

ढाई आखर प्रेमकी यह भाषा ही दुनियाका सबसे बड़ा ज्ञान है। जो इस भाषाको जानता है, वही पंडित है, ज्ञानवान् है, संवादकुशल है। यही ढाई आखर हर पूजा-पाठ, हर इबादतसे बढ़कर है। कोई भी धर्म माननेवाली, कोई भी भाषा बोलनेवाली माँ यह भाषा जानती है। हमसब भी इस भाषाको जानें-समझें, इसीको व्यवहारमें लायें। न जानें कितने लोग इस प्रतीक्षामें हैं कि कोई हमारी भाषाको समझे और उसका उत्तर दे। बोलनेके लिये किसी भाषा या जबानकी नहीं, भावोंकी जरूरत होती है। यह तभी संभव है जब हम स्वयं सचमुच एक नन्हें शिशुकी तरह संवाद करना सीख जायँ और हर बच्चा हमें पसन्द करने लग जाय। यदि बच्चे ही हमसे संवाद नहीं कर सकते, हमें पंसद नहीं कर सकते तो हमारा सारा ज्ञान, हमारी सारी विद्वत्ता निरर्थक है। यदि यह दुनिया सचमुच खूबसूरत बनानी है तो हमें नन्हें शिशुओंकी तरह संवाद करना सीख लेना चाहिये।

सारथि

(श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन)

यात्री—तुम ऐसा करो, सारथि! दोपहर होनेसे पूर्व ही हम अपने गन्तव्य स्थानपर पहुँच जायँ, नहीं तो कड़ी धूप और मरुभूमिका मार्ग है, बड़ा कष्ट होगा। अच्छा, यह क्या? देखो, कितना सुन्दर उद्यान। मैं कुछ देर यहाँ रुकूँगा। सारथि! मेरा मन नहीं मानता और मैं थक भी गया हूँ। कुछ विश्राम कर लूँ। तुम भी तो थक गये होगे, घोड़े भी थक गये होंगे। फिर कुछ गति बढ़ा देना।

सारथि—ऐसे तो बहुत-से उद्यान मार्गमें आयेंगे। इससे भी कहीं सुन्दर, इस प्रकार तो, यात्री! तुम कभी भी गन्तव्य स्थानपर नहीं पहुँच सकोगे।

यात्री—नहीं, अच्छे सारथि! तुम मेरे ऊपर नहीं तो, इन मूक पशुओंपर ही दया करो तथा अपने ऊपर दया करो। कुछ देर विश्राम कर लो।

सारथि—मैं और मेरे घोड़े दिव्य हैं। हमें थकान नहीं होती। शीघ्र-से-शीघ्र यात्रियोंको उनके गन्तव्य स्थानपर पहुँचा देना ही हमारा उद्देश्य है। हमें विश्रामकी आवश्यकता नहीं।

सारथिकी बात सुनी-अनसुनी करके यात्री रथसे कूद पड़ा, उद्यानके भीतर घुसा और वहाँका सौन्दर्य देखकर सब कुछ भूल गया। ऊँचे-ऊँचे सघन छायावाले पके फलोंसे लदे वृक्ष, रंग-बिरंगे सुगन्धित पुष्प, मीठे निर्मल जलके स्रोत, पक्षियोंका कलरव—न जाने कितना समय बीत गया। सारथिने पुकारा—'यात्री! चलो। अब विलम्बका समय नहीं।' यात्रीने उत्तर दिया, 'ठहरो, अभी चलते हैं।' बार-बार सारथि पुकारता, बार-बार यात्री कुछ देर और ठहरनेकी अनुमति माँगता। सारथिका पुकारना अब यात्रीको बुरा लगने लगा और एक बार वह झल्ला ही तो उठा, 'अब इस भरी दोपहरीमें चलनेका समय है? मारोगे मुझे?' सारथि अपना-सा मुँह लेकर रह गया।

कुछ समयके पश्चात् मालीने आकर यात्रीसे कहा, 'अब स्वामी अपनी स्त्रियोंसहित विश्रामके लिये उद्यानमें आनेवाले हैं। आप कृपा करके अन्यत्र चले जायँ।'

यात्री सुनते ही आपेसे बाहर हो गया, 'उस मूर्ख सारथिके बहकाये हुए जान पड़ते हो। मैं नहीं जाता। तुम्हारा स्वामी कैसा असभ्य है, जो भरी दोपहरीमें यात्रियोंको आश्रय देनेके स्थानपर उन्हें बाहर सड़कपर धक्का देता है।'

मालीने बहुत समझाया, परंतु मूढ़ यात्रीपर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इसी बीचमें उद्यानका स्वामी आ गया। उसने धक्के-मुक्के दिलवाकर यात्रीको बलात् बाहर निकलवा दिया। यात्री हताश जलती दोपहरीमें सड़कपर पड़ा बिलबिलाने लगा। जब शोकका वेग कम हुआ तब उसने सारथिको याद किया। अपनी अवज्ञा और उसकी चेतावनीका स्मरण करके वह पछताने लगा। आँख उठाकर देखा तो रथ और सारथि सामने खड़े थे। यात्रीने सारथिके चरणोंमें सिर रखते हुए कातर स्वरमें कहा, 'अच्छे सारथि! मुझे क्षमा करना, मैंने तुम्हारी अवज्ञा की।'

'मेरे यहाँ सबको क्षमा है, मैं अवज्ञासे अप्रसन्न नहीं होता।'

'नहीं अप्रसन्न होते तो मुझे इतना कठोर दण्ड क्यों दिलवाया?'

'मैं किसीको दण्ड नहीं देता। सीधे-से-सीधे और सरल-से-सरल मार्गद्वारा यात्रियोंको उनके गन्तव्य स्थानपर पहुँचा देना ही मेरा एकमात्र उद्देश्य है। बैठो रथमें। चलोगे?'

'हाँ चलूँगा सारथि! अवश्य पर यह बताओ तुम मुझसे अप्रसन्न तो नहीं हो?'

'मैं किसीसे कभी अप्रसन्न नहीं होता।'

रथ चलने लगा, परंतु धूप और गरमीके कारण यात्री तिलमिला उठा, घबराकर सारथिसे बोला—'सारथि! तुम और तुम्हारा रथ दिव्य हैं, पर मैं दिव्य नहीं हूँ। ऐसा अनुग्रह करो, तुम्हारी अवज्ञा भी न हो और मेरे प्राण भी बच जायँ।'

'देखो, सामने एक और उद्यान है, उसमें दोपहरभर

विश्राम कर लो, रम मत जाना। सूर्य ढलते ही चलेंगे। उद्यानके माली और स्वामीकी जितनी भी हो सके, सेवा करना, क्रोध और अहंकारके पास न फटकना तो वे प्रसन्न होकर तुम्हें आश्रय दे देंगे। आश्रय पानेवाले अभ्यागतकी तरह रहना, अभिमान मत बघारना। देखो, सावधान।'

यात्रीने सारथिकी आज्ञा शिरोधार्य की और अत्यन्त विनीत भावसे उद्यानके एक मालीसे आश्रयकी प्रार्थना की। मालीने विश्रामके लिये एक स्थान बतला दिया। दोपहरी ढली, सारथिने पुकारा। यात्रीने अगले दिन प्रातः चलनेके लिये कहा। सारथि चला गया। इसी बीचमें अपनी विनम्रता और अपने मधुर सम्भाषणसे यात्रीने उद्यानके स्वामीको भी प्रसन्न कर लिया। स्वामीने उसे ठहरनेके लिये एक सुन्दर स्थान दे दिया और उसके भोजनकी भी व्यवस्था कर दी।

प्रातः होते ही सारथि फिर आया और फिर यात्रीने अगले दिनपर टाल दिया। यही क्रम चलता रहा, प्रत्येक प्रातःकाल सारथि आता और प्रत्येक बार वह उसे अगले दिनपर टाल देता। इधर अपनी सेवा और विनम्रतासे यात्रीने उद्यानके स्वामी और समस्त कर्मचारियोंको बहुत ही संतुष्ट कर लिया। उसके दिन बड़े सुखसे कटने लगे और एक दिन उसने सारथिसे कह ही तो दिया— 'सारथि! गन्तव्य स्थानमें क्या इससे भी अधिक सुख है, यदि हो तो भी मुझे उसकी आवश्यकता नहीं। मैं इसीमें बहुत संतुष्ट हूँ।'

सारथि चला गया और फिर नहीं आया।

दिन जाते देर नहीं लगती। यात्रीको वहाँ रहते कई वर्ष बीत गये और वह सारथि तथा गन्तव्य स्थानको बिलकुल भूल ही-सा गया। परंतु अब कुछ दिनोंसे यात्रीको बेचैनी अनुभव होने लगी थी। उसके बढ़ते हुए प्रभाव और यशको देखकर कुछ लोग उससे जलने लगे थे। यात्रीने यह भी चाहा कि उसका प्रभाव और यश न फैले, केवल उसे शान्तिपूर्वक रहने दिया जाय, परंतु यह कैसे सम्भव है कि फूल खिले और उसकी सुगन्ध न फैले। यदि फूल अपनी सुगन्धको फैलनेसे रोकना चाहता है तो उसे चाहिये कि बस्तीमें न खिलकर वह किसी जंगलमें खिले; परंतु जंगलमें खिलनेके लिये यात्री तैयार न था। उस उद्यानमें इतना उसका मन रम गया था। एक दिन स्वामीके भोजनमें विष पकड़ा गया। यात्रीपर संदेह हुआ। वह पकड़कर बंदीगृहमें डाल दिया गया। 'हमारे स्वामीको मारकर स्वयं राजा बनना चाहता था'—ऐसा लोग कहते थे और कहते थे कि 'राजा तो बन ही गया था, इसके सामने स्वामीकी कोई पूछ ही नहीं रह गयी थी, परंतु धीरज नहीं रखा, नाममात्रका भी आधिपत्य सहन नहीं हुआ। कहाँ स्वामीका उपकार, कहाँ इसकी नीचता। कृतघ्न!'

यात्री अब बिलख-बिलखकर रो रहा था, सारथि और उसका रथ बार-बार याद आते थे। अर्धरात्रिके उपरान्त किसीने बंदीगृहको खोला, स्वामी सामने खड़े थे, नव-आगन्तुक! मुझे विश्वास है तुम निर्दोष हो, मैं तुम्हें बन्धनमुक्त करता हूँ; परंतु अब तुम यहाँ मत ठहरना एक क्षण भी। तुम जाओ, मेरी समस्त शुभ कामनाओंके साथ।'

स्वामीने यात्रीके बन्धन खोलकर उसे मुक्त कर दिया। दोनों बंदीगृहके बाहर आये। यात्रीने स्वामीके चरणोंपर सिर रखकर अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे क्षमा माँगी, स्वामीने उठाकर आलिंगन किया, बिदा दी।

यात्री रुक-रुककर जाने लगा, घनिष्ठ इष्ट-मित्रोंसे अन्तिम बिदा लेनेके लिये रुका। धीरे-धीरे बहुत बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गयी, यात्रीके जानेसे सब दुखी थे; परंतु स्वामीने निर्दोष पाकर मुक्त कर दिया, इससे सब प्रसन्न भी थे। इतनेमें ही कोई बोल उठा, 'यह तो इधर-उधरकी बातें बनाकर बच गया, अब देखो किसपर विपत्ति आती है।' 'रातभर स्वामीके कान भरे हैं, देखो कौन-कौन फँसते हैं।' 'तभी तो स्वयं भागा जा रहा है।' 'पकड़ो, भागने न पाये, अन्तिम निर्णयतक' एक साथ बहुतसे कण्ठ चिल्ला उठे। राज्याधिकारियोंने बीचमें पड़कर यात्रीको निकल जाने दिया। फिर भी कुछ धौल-मुक्के तो उसपर पड़ ही गये।

उद्यानसे निकलकर एक स्थानपर बैठकर यात्री अपनी दशापर विलाप करने लगा—मुझे कहाँ जाना था, सारथिने क्या कहा था, 'रम मत जाना' मैं क्यों उसका आदेश भूल गया, अब क्या होगा, न यहाँका रहा, न वहाँका रहा।

'वहाँके सदैव हो, हर समय हो, जब बनना चाहो

तभी हो। यहाँके कभी नहीं हो चाहे कितना ही बननेका प्रयत्न करो। अपनेको यहाँका समझना केवल भ्रम है।'

'कौन, सारथि!' तुम आ गये, अबतक तुम कहाँ थे? कबसे मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ? कबसे मैं तुम्हें पुकार रहा हूँ?

'मैं यहीं था, मैं कहीं नहीं जाता। तुम्हीं बार-बार मुझे छोड़कर चले जाते हो। मेरी कोई प्रतीक्षा नहीं करता, मैं ही सबकी प्रतीक्षा करता हूँ।' मुझे कोई नहीं पुकारता, मैं ही सबको पुकारता हूँ, जब भी कोई मेरी पुकार सुन ले।'

'सारथि! अब मुझे ले चलो एकदम, शीघ्र, इसी समय। मैंने तुम्हारा आदेश नहीं माना, मैं रम गया। अब नहीं रमूँगा, अब नहीं रुकूँगा।'

रथ फिर यात्रीको लेकर चल निकला। 'सारथि! गति बढ़ाओ, मुझसे कुछ अप्रसन्न हो क्या? जहाँ तुम मुझे ले चलना चाहते हो उस स्थानके लिये आज मैं प्रथम बार इतना उतावला बना हूँ। सारथि! अब प्रसन्न क्यों नहीं होते?'

'मैं कभी अप्रसन्न नहीं होता, मैं कभी प्रसन्न नहीं होता। यात्रियोंको उनके गन्तव्य स्थानपर पहुँचा देना ही मेरा उद्देश्य है।'

'जो तुम्हारी आज्ञा शिरोधार्य करते हैं, उन्हें सुखपूर्वक, जो तुम्हारी अवहेलना करते हैं और जितनी करते हैं उतने ही उन्हें कष्टों और आपदाओंके बीचसे फँसाकर।'

'मैं न तो किसीको सुख देता हूँ, न किसीको दुःख ही देता हूँ। जिसकी जैसी स्थिति होती है, उसके अनुसार ही मैं उसका मार्ग निर्धारित करता हूँ। जो उस मार्गपर चलनेमें सुखका अनुभव करे, उसे सुख है और जो दुःखका अनुभव करे, उसे दुःख है।'

'ठीक है सारथि! क्षमा करो, उस पथसे भटक जाना ही दुःख है। अब मैं उस पथसे नहीं भटकूँगा। गति बढ़ाओ, मैं शीघ्र-से-शीघ्र यात्रा पूरी करना चाहता हूँ।'

'किस गतिसे गन्तव्य मार्गकी ओर बढ़ना है, इसका निर्णय भी मैं ही करता हूँ। धीमे-धीमे या द्रुतगतिसे, जैसे मैं उचित समझता हूँ, उस गतिसे चलता हूँ।'

'नहीं, सारथि! ऐसा मत कहो, तुम बहुत धीमे-धीमे चल रहे हो, बीचमें कोई और उद्यान दिखायी पड़ गया और मेरा मन रम गया तो क्या होगा? सारथि! अब मैं धोखा नहीं खाऊँगा। इतनी द्रुतगतिसे चलो कि मार्गमें पड़नेवाला कोई दृश्य मुझे दिखायी न दे। गति, गति और गति, केवल गतिका ही ध्यान रहे। लो तुम नहीं मानते, बहुत थक गये हो, कुछ देरके लिये भीतर बैठो। मैं रथ हाँकता हूँ।'

यात्रीने लपककर बाग अपने हाथमें ले ली, सारथि भीतर जा बैठा, अब घोड़े हवासे बातें करने लगे। गन्तव्य स्थान अब आया और अब आया, एकाएक रथ उलट गया, यात्री गिर पड़ा, उसका शरीर चूर-चूर हो गया। चेत होनेपर उसने फिर पुकारा, 'सारथि!'

'यात्री!'

'अब तुम्हीं रथ चलाओ, भूल हुई।'

'मैं बहुत मन्द गतिसे चलाऊँगा।'

'मन्द गतिसे चलाओ।'

'मैं बहुत तीव्र गतिसे चलाऊँगा।'

'तीव्र गतिसे चलाओ।'

'मैं नहीं चलाऊँगा।'

'मत चलाओ।'

'एकाएक एक झपकीके साथ यात्रीने आँखें खोलकर देखा कि गन्तव्य स्थान आ पहुँचा!

ईश्वरमें विश्वास

(श्रीलक्ष्मणस्वरूपजी माहेश्वरी, एम०ए०, एल०एल०बी०)

'क्या ईश्वरका अस्तित्व है?' इस विषयमें बहुत-से विचार मस्तिष्कमें आये, बड़ी कसमकश-सी रही। यह तो सच ही है कि ईश्वर कोई इस तरहकी तर्क-संगत वस्तु नहीं, जिसे गणितके दो और दो—चारकी तरह एक अबोधको, या एक जिज्ञासुको समझा दिया जाय। न वह कोई इस तरहकी वस्तु है, जिसके अस्तित्वका ज्ञान किसी वैज्ञानिककी रसायनशालामें हो सके। तब भी अधिकतर वैज्ञानिकोंने ईश्वरको माना है। अधिकांश गणितज्ञोंने ईश्वरमें आस्था की है। डॉ० पॉल ब्रंटन जब भारतमें श्रीरमण महर्षिसे मिले थे तब जो अनुभूति उन्हें हुई थी, उसका उल्लेख यहाँ आवश्यक है। डॉ० पॉल ब्रंटनने लिखा है कि श्रीरमण महर्षिके सान्निध्यमें एक विचित्र प्रकारकी सनसनी उनके रुधिरमें, उनकी रगोंमें व्याप्त होती रही थी। ऐसा लगता था जैसे किसी अज्ञात शक्तिका ज्योतिपुंज उनके अन्तरालमें समाता जा रहा था और उनकी भौतिक चेतनाएँ शिथिल होती जा रही थीं। उन्होंने लिखा है कि एक ऐसी अनुभूति उन्हें हुई, जिसे विज्ञान या गणितकी कोई भाषा पंक्तिबद्ध नहीं कर सकती।

एक बड़ी मार्मिक घटना है—स्वामी विवेकानन्दके जीवनकी। परिव्राजकके रूपमें स्वामीजी भारतके दौरेपर थे। उत्तर प्रदेशकी बात है। स्वामी विवेकानन्द रेलके तीसरे दर्जेमें सफर कर रहे थे। कई दिनोंकी निरन्तर यात्राके कारण थके हुए थे। भूखे थे। तृषित भी। पास ही एक बनिया बैठा था, जो उनके साथ ही सफर कर रहा था। तरीघाट स्टेशनपर दोनों उतरे। बनियेने अपना सामान एक जगह एकत्रित किया, दरी बिछायी, पानी छिड़का और टिफिन खोलकर खाना शुरू किया। स्वामी विवेकानन्द उतरे और उस बनियेसे जरा दूर, एक कोनेमें जाकर बैठ गये। भूख और गरमीके मारे उनका सिर फटा जा रहा था और उन्हें ऐसा लग रहा था कि मूर्च्छित हो जायँगे। थोड़ी देरमें एक दूसरा बनिया वहाँ आया। उसके एक हाथमें जलका कलसा था, बगलमें बिछानेकी चटाई भी और दूसरे हाथमें भोजनके संयुक्त पात्र थे। वहाँ पहुँचते ही वह स्वामी विवेकानन्दसे बोला—'चलिये, भोजन कर लीजिये। मैं आपके लिये भोजन लाया हूँ।' स्वामी विवेकानन्दने देखा, सोचा इसे कहीं और जाना होगा और गलतफहमीसे यह यहाँ चला आया है। बोले—'भाई, किसे खोज रहे तुम?' बनिया बोला—'महाराज! मैं तो आपके ही पास आया हूँ। उठिये, भोजन कर लीजिये।' स्वामी विवेकानन्द हतबुद्धिसे उसे देखते रहे। बोले, 'भाई, तुम मुझे कैसे जानते हो? अभी-अभी आधा घंटा पहले ही तो मैं रेलसे उतरा हूँ। पहले कभी यहाँ आया भी नहीं। तुम शायद भूल रहे हो। जिसे तुम ढूँढ़ रहे हो वह शायद मैं नहीं हूँ।'

बनिया बोला—'आप भी कैसी बातें करते हैं। अभी-अभी तो मैंने आपको देखा ही था। खाना खाकर दोपहरको सोया ही था कि ऐसा लगा जैसे भगवान् श्रीराम आपको बताकर मुझे कह रहे हैं कि मैं फौरन आपके लिये भोजन लेकर उपस्थित होऊँ। अचकचाकर मेरी नींद खुल गयी। पहले तो जरा विचार हुआ। पर फिर सोचा कि ऐसे ही स्वप्न आ गया होगा। दुबारा सोया ही था कि जैसे फिर किसीने सम्पूर्ण शरीरको झकझोर दिया हो। मैंने देखा कि साक्षात् भगवान् श्रीराम खड़े थे और आपकी ओर इंगित करके मुझे आदेश दे रहे थे कि मैं आपके लिये भोजन लेकर उपस्थित होऊँ, फौरन मेरी नींद टूटी। मैं उठा। मैंने स्नान किया और फौरन चूल्हा जलाकर आपके लिये भोजन तैयार किया। अब मैं आपके समक्ष उपस्थित हूँ। कृपा करके उठें और भोजन करें।'

स्वामी विवेकानन्दने यह सुना तो अविरल अश्रुधारा उनकी आँखोंसे बह निकली। उन्हें यही विचार आता रहा कि ईश्वरकी कितनी असीम अनुकम्पा है, उसके अपने प्रियजनोंपर, कितनी चिन्ता है उसे उनकी!

साधन-सूत्र

भक्तिमार्ग—विश्वासपर आधारित प्रभुप्राप्तिका सरलतम मार्ग

(आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा)

जल ज्यों प्यारा माछरि, लोभी प्यारा दाम।
माता प्यारा बालका, भक्त प्यारा राम॥

मछलीको जैसे जल प्रिय है, लोभी व्यक्तिको जैसे धन प्रिय है, माताको जैसे संतान प्रिय है, वैसे ही भक्तको भगवान् प्रिय हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने तो कहा है—'जैसे कामीको स्त्री प्रिय लगती है और लोभीको जैसे धन प्यारा लगता है, वैसे ही हे रघुनाथ! हे राम! आप निरन्तर मुझे प्रिय लगिये।'

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहि राम॥

(रा०च०मा० ७। १३०ख)

भगवान्‌का सच्चा भक्त तो सदैव परमात्माका स्मरण करता रहता है। उसे भगवान् इतने प्रिय लगते हैं कि उनके आगे वह संसारके सब सुखोंका त्याग कर देता है—

नारायण हरि भजन में ये पाँचो न सुहात।
विषयभोग, निद्रा, हँसी, जगत-प्रीति, बहु बात॥

भगवान् भी ऐसे भक्तोंके लिये कहते हैं 'जो व्यक्ति मुझमें अनन्य चित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें लगे हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ, अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हूँ—ऐसे भक्तोंके पीछे-पीछे भगवान् चलते हैं'—

कबिरा मन निर्मल भया, जैसे गंगा नीर।
पाछे पाछे हरि फिरें, कहत कबीर कबीर॥

भक्त कहता है—

प्रभुजी! तुम स्वामी, हम दासा, ऐसी भगति करे रैदासा।

और भगवान् कहते हैं—

मैं भगतनको दास, भगत मेरो मुकुटमणि।

कहते हैं, एक गड़रिया जंगलमें बकरियोंको चराता हुआ दोपहरके समय सूर्यकी गर्मीसे परेशान होकर एक वृक्षके नीचे बैठ गया। वह हृदयका सच्चा तथा भोला था। उसने कहींसे सुन रखा था कि ईश्वर अकेला है और कोई उसका दूसरा साथी नहीं है। बैठे-बैठे उसके मनमें ईश्वरका स्मरण हो आया। अपने सरलभावसे वह कहने लगा—'हे ईश्वर! अगर तू अकेला ही है तो तुझे खाना कौन खिलाता होगा? तेरे कपड़े कौन धोता होगा, तुझे स्नान कौन कराता होगा और अकेले रहकर तेरा मन कैसे लगता होगा? अगर मैं तुझको पा जाऊँ तो बकरियोंके दूधसे तेरा सिर धोऊँ, तुझे स्नान कराऊँ, दूध और पनीर खिलाऊँ, तेरे पाँव दबाऊँ, अगर तू बीमार हो जाय तो दवा ले आऊँ और खूब कम्बल तथा चादर ढककर सुलाऊँ।' ऐसी उसकी समझ थी, पर प्रेम सच्चा था।

संयोगसे हजरत मूसा नबी उधरसे गुजरे। उन्होंने गड़रियेकी बातोंको सुना, बोले—'ओ काफिर! तू क्या बकता है? यह कहना घोर अपराध है। इससे खुदा नाराज होता है'। नाराजगीका शब्द सुनते ही गड़रियेका हृदय काँप उठा, उसने सादगीसे पूछा, 'हजरत! क्या मैंने पाप किया है?' हजरत मूसाने कहा—'हाँ, तूने सख्त गुनाह किया है। ईश्वरकी शानमें ऐसी बातें कहना सख्त गुनाह है'। सीधा-सादा गड़रिया डरकर रोता हुआ जंगलकी ओर चला गया।

हजरत मूसा नबी रोजाना पर्वतपर पहुँचकर खुदाके नूरका जलवा देखते थे। उस दिन नूर दिखायी नहीं दिया। अर्ज की—'ऐ मालिक! मैंने आज क्या कसूर किया, जो हमेशा दीदार होता था और आज दीदार जल्वागर नहीं हुआ?' आवाज आयी—'ऐ मूसा! आज तूने हमारे भक्तको हमसे अलग कर दिया, तेरा फर्ज मेरे साथ मिलाप करानेका था। मगर आज तूने उस फर्जको बिलकुल भुला दिया और मेरे भक्तको जो मेरे साथ रूबरू बैठकर बातें कर रहा था, मुझसे जुदा कर दिया। अब तो उसीके मिलनेसे काम बनेगा।'

हजरत मूसा डरकर उस गड़रियेकी तलाशमें निकले। वह एक पेड़के नीचे बैठा था। मूसाने कहा—'ऐ गड़रिये! तू जो कहता था, सच था। उसी तरह तेरे कहने-सुननेसे खुदा राजी होता है।

भक्तिमें आडम्बर भगवान्‌को प्रिय नहीं है। भक्तिका पथ सरलतम पथ है। श्रीराम अयोध्यावासियोंसे कहते हैं—

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा॥
सरल सुभाव न मन कुटिलाई। जथा लाभ संतोष सदाई॥

(रा०च०मा० ७। ४६। १-२)

—'कहो तो! भक्तिमार्गमें कौन-सा परिश्रम है? इसमें न योगकी आवश्यकता है, न यज्ञ, जप, तप और उपवासकी! यहाँ इतना ही आवश्यक है कि सरल स्वभाव हो, मनमें कुटिलता न हो और जो कुछ मिले उसीमें सदा सन्तोष रखे।'

एक अन्य स्थलपर, जब विभीषण भगवान्‌की शरणागतिमें आना चाहते हैं, भगवान् राम सुग्रीवसे कहते हैं—

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

जो मनुष्य निर्मल मनका होता है, वही मुझे पाता है। मुझे कपट और छल-छिद्र नहीं सुहाते।

इसी तरह श्रीमद्भागवतमें भी असुर बालकोंको समझाते हुए भक्त प्रह्लाद कहते हैं—'मित्रो! भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिये कोई बहुत परिश्रम या प्रयत्न नहीं करना पड़ता; क्योंकि वे समस्त प्राणियोंके आत्मा हैं और सर्वत्र सबकी सत्ताके रूपमें स्वयंसिद्ध वस्तु हैं।'

न ह्यच्युतं प्रीणयतो बह्वायासोऽसुरात्मजाः।
आत्मत्वात् सर्वभूतानां सिद्धत्वादिह सर्वतः॥

(श्रीमद्भा० ७। ६। १९)

भगवान् तो भावके—प्रेमके भूखे हैं। भावसे भगवान्‌ने शबरीके बेर खाये, विदुरानीके हाथसे केलेके छिलके खाये, गोपियोंके रिझानेपर थोड़ी-सी छाछके लिये नाचे। भक्तोंके प्रेमके वशीभूत होकर भगवान्‌ने अनेक रूप धारणकर उनके कार्य किये हैं; जो कि भक्तोंके चरित्र पढ़ने-सुननेसे सहज ही स्पष्ट हो जाते हैं।

संत-वाणी

भगवान्‌के मनकी बात पूरी करनेके लिये मानव-जीवन मिला था; पर अपने मनकी बात पूरी करने लगे, यही हमारी भूल है। प्रतीति इन्द्रियोंका विषय है, पर भगवान् इन्द्रियोंके विषय नहीं हैं। भगवान् सबको प्राप्य हैं, पर हमें ही प्रभु-प्राप्तिकी प्यास नहीं है, इसलिये हम उसे छोड़कर दूसरी वस्तुओंकी प्राप्तिका प्रयास करते हैं। सही काम करो; पर उसका फल मत चाहो। तब उसके बदलेमें प्रभु-प्रेम मिलेगा। कर्मका फल तो स्वतः उसी प्रकार मिलेगा, जैसे कि फलदार वृक्षको खरीदनेपर छाया और हवा अपने-आप मिल जाती है।

आज जो मूल बात है वह यह है कि अपने जीवनमें ये दो बातें उतार लो—अप्राप्त जगत् अपना नहीं है, प्राप्त प्रभु अपने हैं। जो वस्तु प्राप्त-जैसी मालूम होती है, उसके द्वारा प्रत्येक प्रवृत्ति प्रभु-पूजा बन जाय। प्रेमीको प्रभु-पूजाके अतिरिक्त और कुछ नहीं करना है। मिली हुई स्वाधीनताका दुरुपयोग न करनेसे प्रभु-प्रेमकी प्राप्ति होती है। अपने लिये तप करना भी भोग है; पर प्रभुके लिये झाड़ू लगाना भी पूजा है।

साधनका सार यह है कि साधक साधननिष्ठ होकर साध्यको रस प्रदान करे। तो साधकका जीवन हुआ—साध्यको रस देना। यह नियम है कि जो जिसको उत्पन्न करता है, वह उसके लिये रसरूप हो जाता है। हमारे साध्यने हमें उत्पन्न किया है इसलिये हम उसके लिये रसरूप हैं, इसमें संदेह नहीं है। जिसने हमें बनाया है और साधन-सामग्री दी है, क्या उसे हमारी पूजा रस नहीं देगी? हमारा जीवन प्रभुने अपने रस-सम्पादनके लिये बनाया है।

हममें दिन-रात यह सजगता बनी रहे कि प्रभुको हमसे रस मिलता रहे, यही हमारा जीवन है। हे प्रभो! तुम्हारी इच्छा पूरी हो। जब आपका अपना मन ही नहीं है, तो बन्धन कैसा? बन्धन और मोक्षका प्रश्न उन्हींके सामने है, जिन्होंने सुने हुए प्रभुपर अपनेको न्यौछावर नहीं किया तथा जिन्होंने विवेकपूर्वक वस्तुओंकी ममताका त्याग नहीं किया। जिस किसीने सुने हुए प्रभुपर अपनेको न्यौछावर कर दिया है और विवेकपूर्वक वस्तुओंकी ममताका त्याग कर दिया है, उसके सामने बन्धन और मोक्षका प्रश्न ही नहीं है।

—[ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज]

संत-चरित—

समर्थ गुरु रामदास स्वामी

भगवान् श्रीसूर्यनारायणके वरदानसे सूर्याजी पन्तकी धर्मपत्नी रेणकाबाईके गर्भसे सं० १६६२ मार्गशीर्ष शुक्ला १३को प्रथम पुत्रका जन्म हुआ, जिसका नाम गंगाधर रखा गया, जिसने अपनी वयस्के ९वें वर्षमें ही श्रीहनुमान्‌जीके मन्दिरमें ग्यारह दिनतक मारुति-कवचका पाठ करके श्रीहनुमान्‌जीको प्रसन्न कर लिया और जिसे भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने भी दर्शन देकर अनुगृहीत किया। ये ही गंगाधरजी आगे चलकर 'श्रेष्ठ' या 'रामीरामदास' के नामसे प्रसिद्ध हुए। इनके जन्मके तीन वर्ष बाद संवत् १६६५ की चैत्र शुक्ला नवमीके दिन, ठीक श्रीरामजन्मके समय, रेणकाबाईने उस महापुरुषको जन्म दिया, जिसे संसार समर्थ गुरु रामदास स्वामीके नामसे जानता है। इनका नाम पिताने नारायण रखा।

नारायण जब पाँच वर्षके थे, तब उनका उपनयन-संस्कार हुआ। बचपनमें ये बड़े ऊधमी थे; पेड़ोंपर चढ़ना, कूदना, पहाड़ोंपर तेजीसे चढ़ना-उतरना, उछलना-कूदना-फाँदना ये ही सब इनके खेल थे। लिखना, पढ़ना और हिसाब लगाना तथा नित्यका ब्रह्मकर्म भी इन्होंने बहुत जल्द सीख लिया। सूर्यदेवको ये नित्य दो हजार नमस्कार किया करते थे। आठ वर्ष की अवस्थामें ही इन्होंने भी श्रीहनुमान्‌जीको प्रसन्न किया और श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन पाये। श्रीरामचन्द्रजीने स्वयं इन्हें दीक्षा दी और इनका नाम रामदास रखा। जब ये बारह वर्षके हुए तब इनके विवाहकी तैयारी हुई। विवाहमण्डपमें वर-वधूके बीच अन्त:पट डालकर ब्राह्मणलोग मंगलाचरणके श्लोक बोलने लगे। पहले मंगलाचरणके पीछे सब लोग जब 'शुभलग्न सावधान' बोले तब रामदासजी सचमुच ही सावधान होकर वहाँसे ऐसे भागे कि बारह वर्षतक फिर घरके लोगोंको पता ही न लगा कि वे कहाँ गये। वहाँसे तीन कोसपर गोदावरी नदी है, उसे तैरकर रामदासजीने पार किया और किनारे-किनारे पैदल चलकर वे नासिक-पंचवटी पहुँचे। पंचवटीमें इन्हें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके फिर दर्शन हुए। उस अवसरपर रामदासजीने एक 'करुणादशक' द्वारा बड़ी करुणापूर्ण वाणीमें प्रभुकी विनय की। तत्पश्चात् नासिकके समीप टाफली ग्राममें जाकर, जहाँ गोदा और नन्दिनीका संगम हुआ है, एक गुफामें रामदासजी रहने लगे। वहाँ इन्होंने त्रयोदशाक्षर राममन्त्रका पुरश्चरण आरम्भ किया। दैनिक नियमोंका पालन करनेके पश्चात् दिन या रातको जब जो समय मिलता,उसमें ये रामायण, वेद-वेदान्त, उपनिषद्-गीता, भागवत आदि ग्रन्थ देखा करते थे। इस प्रकार वहाँ तप करते हुए इन्हें तीन वर्ष हो गये। एक दिन रामदासजी संगमपर ब्रह्मयज्ञ कर रहे थे और उधरसे एक विधवा स्त्रीने आकर इन्हें प्रणाम किया। इसपर 'अष्टपुत्रा सौभाग्यवती भव' ऐसा आशीर्वाद श्रीरामदासजीके मुँहसे निकला, जिसे सुनकर स्त्रीने पूछा 'इस जन्ममें या दूसरे जन्ममें?'

बात यह थी कि उस स्त्रीके पतिकी मृत्यु हो गयी थी और वह उसके साथ सती होने जा रही थी। सती होने जानेके पूर्व सत्पुरुषोंको प्रणाम करनेकी जो विधि है, उसके अनुसार वह इन्हें तपस्वी महात्मा जानकर प्रणाम करने आयी थी। रामदासजीने कहा—'अच्छा, प्रेत (शव)-को यहाँ ले आओ।' प्रेतके सामने आते ही रामदासजीने श्रीरामनाम लेकर उसपर तीर्थोदक छिड़का।

तुरंत वह मृत शरीर 'राम-राम' उच्चारण करता हुआ जीवित हो उठा। इस प्रकार जो पुनर्जीवित हुए, उनका नाम गिरिधर पन्त था और उनकी वह सती स्त्री अन्नपूर्णाबाई थी। अन्नपूर्णासे फिर रामदासजीने कहा—'मैंने तुझे पहले आठ पुत्रोंका आशीर्वाद दिया था, अब श्रीरामकृपासे दोका और देता हूँ।' इस आशीर्वादके अनुसार उस ब्राह्मणदम्पतीको दस पुत्र हुए और उन्होंने प्रथम पुत्र श्रीरामदासजीके चरणोंमें अर्पण किया। वही समर्पित पुत्र उद्धव गोसावीके नामसे प्रख्यात हुआ। अस्तु, उस स्थानपर सं० १६८९में जब पुरश्चरण समाप्त हुआ, तब श्रीरामचन्द्रजीने समर्थ गुरु रामदासजीको दर्शन देकर यह आज्ञा दी कि 'अब तुम सब तीर्थोंकी यात्रा करके कृष्णा नदीके तटपर रहो।'

तदनुसार श्रीसमर्थ रामदासजी तीर्थयात्राको चले। सबसे पहले श्रीसमर्थ काशी गये। वहाँसे अयोध्या जाकर श्रीराममन्दिरमें अपने परमाराध्यके दर्शन किये। तत्पश्चात् गोकुल, वृन्दावन, मथुरा, द्वारका होकर श्रीनगर, बदरीनारायण और केदारेश्वर गये। वहाँसे पर्वतशिखरपर ध्यान लगाये बैठे हुए श्रीश्वेतमारुतिके दर्शन करने गये, वहाँ चार महीने ठहरे और श्रीश्वेतमारुतिने इन्हें प्रसाद-स्वरूप टोप, मेखला, वल्कल, भगवे वस्त्र, जपमाल, पादुका और कुबड़ी दी। यहाँसे उत्तर मानसकी यात्रा करके जगन्नाथपुरी और पूर्वी समुद्रके किनारेसे होकर दक्षिण समुद्रके तटपर श्रीरामेश्वर सेतुबन्ध तथा लंकाके दर्शनकर गोकर्ण, महाबलेश्वर, शेषाचल, शैलमल्लिकार्जुन, पंचमहालिंग, किष्किन्धा, पम्पा सरोवर, ऋष्यमूक पर्वत, करवीरक्षेत्र परशुरामक्षेत्र, पण्ढरपुर, भीमाशंकर और त्र्यम्बकेश्वर होते हुए श्रीसमर्थ रामदास पंचवटी लौटे।

इस प्रकार जब तीर्थयात्रा समाप्त हो गयी, तब समर्थ गोदावरीकी परिक्रमा करने निकले। रास्तेमें एक दिन इन्होंने पैठणमें कीर्तन किया और एक अद्भुत चमत्कार दिखलाया, जिससे वहाँके लोगोंने इन्हें पहचान लिया और कहा कि 'आप तो निश्चिन्त होकर तीर्थोंमें घूम रहे हैं, परंतु घरमें आपकी माता आपके लिये तड़प रही हैं। आपके विरहमें रो-रोकर उन्होंने नेत्रोंकी ज्योति खो दी है।' यह सुनकर रामदासजी महाराज तुरंत ही माताके दर्शनार्थ जाम्बगाँव गये। द्वारपरसे आवाज दी 'जय जय रघुवीर समर्थ!' श्रेष्ठजीकी धर्मपत्नी यह सुनकर भिक्षा लेकर आयीं, पर समर्थने कहा—'यह भिक्षा माँगनेवाला कोई वैरागी नहीं है।' तबतक माताने आवाज सुनी और पूछा—'कौन? मेरा बेटा नारायण?' समर्थने कहा—'हाँ, माताजी, मैं ही हूँ।' और यह कहकर उन्होंने माताके समीप पहुँचकर उनके चरणोंमें मस्तक रख दिया। चौबीस वर्षके दीर्घकालके बाद माता और पुत्रका मिलन हुआ था। समर्थने माताके नेत्रोंपर अपना हाथ फेरा, जिससे खोयी हुई नेत्रज्योति माताको फिर प्राप्त हो गयी। इसके बाद समर्थने माताको कपिलगीता सुनायी और उनसे आज्ञा लेकर गोदावरीकी परिक्रमाका रास्ता लिया। सप्तगोदावरीसंगमकी सव्य परिक्रमा करके, सीधे त्र्यम्बकेश्वर और त्र्यम्बकेश्वरसे पंचवटी पहुँचकर श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करनेके पश्चात् समर्थ टाफलीमें आये, जहाँ वे उद्धवसे मिले। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि तीर्थयात्राके प्रसंगसे श्रीसमर्थ जहाँ-जहाँ गये, वहाँ-वहाँ इन्होंने अपने मठ स्थापित किये और प्रत्येक मठमें एक-एक अधिकारी शिष्यकी नियुक्ति की।

इस तरह बारह वर्ष तपस्या और बारह वर्ष तीर्थयात्रा करके श्रीसमर्थ सं० १७०१के वैशाखमासमें श्रीरामचन्द्रजीके आज्ञानुसार कृष्णानदीके तटपर आये। वहाँ माहुली क्षेत्रमें श्रीसमर्थ जब रहने लगे तब बड़े-बड़े संतलोग इनसे मिलनेके लिये आने लगे। बड़गाँवके जयराम स्वामी, निगडीके रंगनाथ स्वामी, ब्रह्मनालके आनन्दमूर्ति स्वामी, भागानगरके केशव स्वामी और स्वयं श्रीसमर्थ—ये पाँचों मिलकर दास-पंचायतन कहाते थे। यहीं श्रीतुकारामजी महाराज और चिंचवडके देव श्रीसमर्थसे मिलने आये। कुछ कालके बाद श्रीसमर्थ माहुलीसे कृष्णा और कोपनाके 'प्रीतिसंगम' पर कव्हाड स्थानमें आये और वहाँसे पाँच मीलपर शाहपुरके समीप पर्वतकी एक गुफामें रहने लगे। शाहपुरमें श्रीसमर्थने 'प्रतापमारुतिमन्दिर' की स्थापना की और तत्पश्चात्

वहाँसे चलकर चाफल खोरेमें आये, जहाँके सूबेदारने इनसे दीक्षा ली। वहाँसे घूमते-घूमते श्रीसमर्थ कव्हाड पहुँचे और फिर वहाँसे मिरज होते हुए कोल्हापुर गये। कोल्हापुरके सूबेदार पाराजी पन्त बर्वेने इनसे दीक्षा ली और उनकी बहिन रखुमाबाईने भी अपने अम्बाजी और दत्तात्रेय नामक दो पुत्रोंके साथ अपनेको श्रीसमर्थ-चरणोंमें समर्पित कर दिया।

सं० १७०२से श्रीसमर्थ रामनवमीका उत्सव करने लगे। सबसे पहला उत्सव मसूरमें बड़े धूमधामके साथ सम्पन्न हुआ। उसके बाद प्रतिवर्ष अन्यान्य स्थानोंमें क्रमशः श्रीसमर्थ-सम्प्रदायानुसार नव चैतन्यके साथ श्रीरामजयन्त्युत्सव मनाया जाने लगा। उन्हीं दिनों महाराष्ट्रमें श्रीशिवाजी महाराज हिन्दूधर्मराज्यकी संस्थापना करनेके उद्योगमें लगे हुए थे। श्रीसमर्थ रामदास स्वामीकी सत्कीर्ति सुनकर श्रीशिवाजीका मन उनकी ओर दौड़ गया और उन्होंने इनको गुरुरूपमें वरण कर लिया। सं० १७०६में चाफलके समीप शिंगणवाडीमें श्रीसमर्थने उन्हें शिष्यरूपमें ग्रहण किया और श्रीरामचन्द्रके त्रयोदशाक्षर मन्त्रका उपदेश दिया। संवत् १७०७में श्रीसमर्थ परलीमें आकर रहने लगे, वह तभीसे सज्जनगढ़ कहलाने लगा और जहाँ अन्य अनेक साधु-संतोंके अतिरिक्त सुभीतेका स्थान होनेके कारण श्रीशिवाजी महाराज बार-बार इनके दर्शनार्थ आने लगे। सं० १७१२में जब शिवाजी महाराज सातारेमें थे तब श्रीसमर्थ करंज गाँवसे चलकर भिक्षा माँगते हुए राजद्वारपर पहुँचे। महाराजने इन्हें साष्टांग प्रणाम करके एक पत्र लिखकर इनकी झोलीमें डाल दिया, जिसमें यह लिखा था कि 'आजतक मैंने जो कुछ अर्जित किया है, वह सब स्वामीके चरणोंमें समर्पित है।' दूसरे दिन श्रीशिवाजी महाराज स्वामीके साथ झोली लटकाकर भिक्षा भी माँगने लगे, परंतु जब श्रीसमर्थने उन्हें समझाया कि 'राज्य करना ही तुम्हारा धर्म है' तब श्रीशिवाजी महाराजने अपने हाथमें फिर शासनसूत्र ले लिया और स्वामीके मन्त्रणानुसार राजकार्य सम्हालने लगे।

श्रीसमर्थ जब तंजावर गये थे, तब वहाँके एक अन्धे कारीगरको आँखें देकर इन्होंने श्रीराम, लक्ष्मण, सीता और हनुमान्‌की चार मूर्तियाँ बनानेका काम सौंपा था। वे मूर्तियाँ सं० १७३८ फाल्गुन कृ० ५को सज्जनगढ़ पहुँचीं। उन्हें देखकर श्रीसमर्थको परम सन्तोष हुआ। इन्होंने उसी दिन चार मूर्तियोंकी विधिपूर्वक स्थापना की। उनकी पूजा-अर्चा होने लगी। फिर माघ कृ० ९के दिन सबसे कह-सुनकर श्रीसमर्थने महाप्रयाणकी तैयारी की। श्रीराममूर्तिके सामने आसन लगाकर बैठ गये। उनके प्रयाणकालीन उद्‌गारोंको सुनकर आक्का-उद्धवादि शिष्य घबराये। इसपर श्रीसमर्थने कहा कि 'आजतक जो अध्यात्म श्रवण करते रहे, क्या उसका यही फल है ?' शिष्योंने कहा—'स्वामी! आप सर्वान्तर्यामी हैं, घट-घटके वासी हैं; पर आपके प्रत्यक्ष और सम्भाषणका लाभ अब नहीं मिलेगा।' यह सुनकर श्रीसमर्थने शिष्योंके मस्तकपर हाथ रखकर कहा 'आत्माराम,' 'दासबोध' इन दो ग्रन्थोंका सेवन करनेवाले भक्त कभी दुखी न होंगे। तत्पश्चात् इक्कीस बार 'हर-हर' शब्दका उच्चारण करके श्रीसमर्थने ज्यों ही श्रीरामनाम लिया, त्यों ही उनके मुखसे एक ज्योति निकलकर श्रीरामचन्द्रजीकी मूर्तिमें समा गयी!

श्रीसमर्थके प्रसिद्ध ग्रन्थोंके नाम ये हैं—दासबोध, मनोबोध, करुणाष्टक, पुराना दासबोध, आत्माराम, रामायण, ओवी चौदह शतक, स्फुट ओवियाँ, षड्रिपु, पंचीकरण योग, चतुर्थ मान, मानपंचक, पंचमान, स्फुट प्रकरण और स्फुट श्लोक।

श्रीसमर्थद्वारा स्थापित जो सुप्रसिद्ध ग्यारह मारुति हैं, उनके स्थान ये हैं—शाहपुर, मसूर, चाफलमें दो स्थान, डंव्रज, शिरसप्त, मन पाडलें, वारगाँव, माजगाँव, शिंगणवाडी और बाहें।

श्रीसमर्थके मठस्थानोंके नाम ये हैं—जांब, चाफल, सज्जनगढ़, टाफली, तंजावर, डोमगाँव, मन पाडले, मिरज, राशिबड़े, पण्ढरपुर, प्रयाग, काशी, अयोध्या, मथुरा, द्वारका, बद्रीकेदार, रामेश्वर, गंगासागर आदि।

तनावरहित जीवन जीनेकी कला

(संत श्रीहरिजी महाराज)

भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें लिखा है—तुम क्या लेकर पैदा हुए थे? कर्म करो, फलकी इच्छा मत रखो (परमात्माके ऊपर सब छोड़ दो), तब मनको सन्तोष मिलता है। हमेशा याद रखें, जो आपके भाग्यमें नहीं है, वह दुनियाकी कोई भी शक्ति आपको दे नहीं सकती और जो आपके भाग्यमें है, उसे दुनियाकी कोई भी ताकत आपसे छीन नहीं सकती। ईश्वरीय शक्ति असम्भवको भी सम्भव बना सकती है। अतः कर्म ही कामधेनु एवं प्रार्थना ही पारसमणि है।

भौतिक स्तरपर आप अपनी तुलना हमेशा ऐसे व्यक्तिसे करें, जो आपसे कम भाग्यशाली है। इससे आपको भौतिक सन्तोष प्राप्त होगा।

एक आदमी भगवान्‌को कोसता हुआ अति दुखी मनसे चला जा रहा था, क्योंकि उसके पास पाँवमें पहननेके लिये जूते नहीं थे। कुछ दूरी तय करनेके पश्चात् उसकी नजर एक ऐसे इंसानपर पड़ी, जिसके पाँव ही नहीं थे। तत्काल उसका दुःख हलका हो गया और वह प्रभुको धन्यवाद देने लगा कि प्रभुने उसे लँगड़ा-लूला पैदा नहीं किया।

आध्यात्मिक स्तरपर आप ऐसे व्यक्तिसे अपनी तुलना करें, जो आपसे आगे हैं। इससे आपका आध्यात्मिक असन्तोष बढ़ेगा और आप आध्यात्मिक रूपसे उससे आगे जानेकी चेष्टा करेंगे। प्रगति और शान्तिकी यही डगर है।

किसीकी भी किसी बातके लिये कभी आलोचना न करें, चाहे वह कितना ही गलत क्यों न हो। मानसिक शान्ति चाहिये तो अपने कामसे ही काम रखें। मनकी शान्तिके लिये अपने कामसे काम रखना अचूक औषधि है। भगवान्‌ने आपको दुनियाका थानेदार या जज नियुक्त नहीं किया है। संसारमें जो कुछ भी हो रहा है, वह परमेश्वरकी इच्छासे ही हो रहा है। भगवान् संसारकी हर घटनाको तीनोंकालके सन्दर्भमें देखते हैं। परनिन्दा परमपिता परमेश्वरकी निन्दाके समान है, क्योंकि ऐसा करके आप भगवान्‌की इच्छा, बुद्धि एवं न्यायका विरोध करते हैं। परनिन्दा न करनेसे आपका मन शान्त रहेगा।

कई बार अपनी कोई समस्या नहीं होती, लेकिन दूसरोंके पास क्या है, यही देखकर आप निराशा एवं तनावसे ग्रसित हो जाते हैं। दूसरेके पास क्या है? कहाँसे आया? आपको यह सोचनेकी जरूरत नहीं है। दूसरेकी तरफ ध्यान रखेंगे तो जो आपके पास है, वह भी धीरे-धीरे समाप्त हो जायगा। पूर्वजन्मके संस्कार भी साथ चलते हैं, जिसके कारण कोई राजाके घर पैदा होता है तो कोई रंकके घर। यह हम सभीके पिछले जनमोंका लेखा-जोखा है। हर हालातमें प्रभुको धन्यवाद करें, आपको सन्तोष मिलेगा। अपने नंगे पाँव न देखें; उनको देखें जिनके पाँव ही नहीं हैं। हर काम प्रभुके होकर करें तो पाप होगा ही नहीं। हर धर्मने पापको बुरा कहा है। दुनियाके सारे धर्म इंसानकी सेवामें जुटे हैं। मुसलमानी खैरात, हिन्दू दान, सिख लंगर, ईसाई सेवा—यह सब प्रभुकी इच्छा ही तो है। इंसान जब कोई अच्छा काम करता है तो उसे अपार सुख मिलता है। तनाव कम करनेके लिये दान देना भी अच्छा तरीका है।

कम बोलनेसे भी तनाव कम होता है। घर हो या बाहर, ज्यादा बोलनेवालोंसे सभी नफरत करते हैं। कम बोलना समझदारीकी निशानी है। बिना सोचे कुछ भी बोलनेसे अनर्थ हो सकता है। महाभारत इसका साक्षात् उदाहरण है। एक बार द्रौपदीने दुर्योधनको कहा था—'अन्धेका पुत्र अन्धा', उसके बाद द्रौपदीके साथ क्या-क्या घटित हुआ, सभी जानते हैं। अतः कम बोलें। बिन माँगे किसीको भी सलाह न दें। अपने कामसे काम रखें। किसीसे भी बहस न करें। इससे कुछ भी हासिल होनेवाला नहीं है। बहसमें जीतनेपर आपका अहंकार बढ़ेगा और सामनेवाला आहत होगा, जिससे दोस्तीमें दरार पड़ेगी।

अतः दूसरोंको अपनी बातपर अड़ा रहने दीजिये। संसारमें ऐसे मूर्खोंकी कमी नहीं है, जो किसीकी बात सुननेके लिये तैयार नहीं हैं। उनसे बहस करके अपनी शक्ति एवं समयका दुरुपयोग न करें। यही तनावरहित जीवन जीनेकी कला है।

गोविन्द

(श्रीरामस्वरूपदासजी पाण्डेय)

कितना प्यारा नाम है गोविन्द, क्यों न हो, क्योंकि यह प्यारा नाम गोपाल कृष्णकी परमाराध्या गोमाताका दिया हुआ है। गोपालकृष्णको आज अपने अवतार लेनेके प्रयोजनका फल मिल गया है। सेवकको सेव्यकी प्रसन्नतासे श्रेष्ठ कुछ भी नहीं होता। सुरभि गोमाताने समारोहपूर्वक अभिषेकका साज सजाया। अपने वात्सल्य रसके सागरको उड़ेल दिया। अहा! गोमाता अपने चारों स्तनोंसे कृष्णका दिव्य अभिषेक करके चतु:समुद्रोंका प्रतिनिधित्व कर रही हैं। पुनः आकाशगंगाके जलको लेकर गजरत्न ऐरावत शुद्धोदकसे अभिषेक कर रहा है। अपराधी-सा देवराज इन्द्र गोमाताका आश्रय लेकर त्राण पा रहा है। आज उसे अपनी सामर्थ्य समझमें आ गयी है कि मैं परमात्माके जलकल-विभागका सेवकमात्र हूँ, सार्वभौम नहीं। ऋषि-मुनि तथा देवसमुदाय इस मंगल अभिषेकका दर्शनकर—गोविन्द पदका अभिनन्दनकर 'जय गोविन्द, जय गोविन्द' कर रहे हैं।

दिवि देवगणाः साध्याः सिद्धगन्धर्वचारणाः।
तुष्टुवुर्मुमुचुस्तुष्टाः पुष्पवर्षाणि पार्थिव॥

इस लीलाके मूलमें अपनी परमाराध्या गोमाताकी महिमा प्रगट करना ही गोपालकृष्णका उद्देश्य है। इस लीलाका परम भाव है—देवराज इन्द्र-जैसा सामर्थ्यवान् भी यदि गाय और गो-सेवकोंके अनिष्टका संकल्प करता है तो उसकी भी खैर नहीं। अन्तमें गोमाताके आश्रयसे ही इन्द्रकी रक्षा होती है। श्रीस्कन्दपुराणोक्त श्रीमद्भागवत-महापुराणके माहात्म्यके प्रसंगमें महर्षि शाण्डिल्य भगवान् कृष्णके मनोभाव या कामको बताते हैं—

कामास्तु वाञ्छितास्तस्य गावो गोपाश्च गोपिकाः।

भगवान् कृष्णका वांछित काम गाय, गोप तथा गोपीजन हैं। वह गोमाताकी पुकार सुन ही व्याकुल हो अवतरित होते हैं।

इन्द्रयागकी तैयारीमें लगे व्रजमण्डलके वृद्धजनों तथा नन्दादिसे बालकृष्णने पूछा—बाबा, यह कौन-से उत्सवकी तैयारी हो रही है?

यह महोत्सव किस उद्देश्यसे किया जा रहा है? आप कृपा करके बतायें।

नन्दादि वृद्धजनोंने कहा—'**पर्जन्यो भगवानिन्द्रो मेघास्तस्यात्ममूर्तयः।**'

भगवान् इन्द्रका स्वरूप यह बादल हैं। अर्थात् इन्द्रकी कृपासे पानी बरसता है अतः इन्द्र भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये हम सब इन्द्रयज्ञ कर रहे हैं। यदि कोई इसमें बाधक बनेगा तो उसका मंगल नहीं होगा।

यह सुनकर गोसेवाको निर्दोष और सर्वोत्कृष्ट कर्म सिद्ध करने, गोमाताकी लोकोत्तर महिमाको प्रकट करनेको तथा '**इन्द्राय मन्युञ्जनयन्**' इन्द्रको क्रोधित करनेको भगवान् कृष्णने इन्द्रयागका निषेधकर गोपुष्टि-यज्ञका प्रस्ताव रखा—'**तस्माद् गवां ब्राह्मणानामद्रेश्चारभ्यतां मखः**' अतः गौ, ब्राह्मण और गोवर्धनकी आराधनास्वरूप यज्ञ करना चाहिये। भगवान्‌ने यह प्रस्ताव '**शक्रदर्पं जिघांसता**' इन्द्रके अभिमानको नष्ट करनेको किया।

व्रजवासियोंने भगवान्‌के प्रस्तावको स्वीकार करके गोपुष्टियज्ञ किया। भगवान् कृष्णने गोपोंमें विश्वास जगाने तथा गोमाता एवं गोवर्धन गिरिराजकी महिमाको प्रकट करनेको प्रत्यक्ष गिरिराजके रूपमें दर्शन देकर उनकी पूजाको स्वीकार किया। इस प्रकार गो, गोवर्धन और ब्राह्मणोंका उत्साहपूर्वक सम्मान किया गया। कुपित होकर इन्द्रने प्रलयकालीन सांवर्तक मेघगणोंको अतिवृष्टिकर व्रजको बहा देनेकी आज्ञा दी। मदान्ध इन्द्र देवराज होकर भी भगवान्‌की महिमा भूल गया। उसने भगवान् कृष्णको अनेकों अपशब्द कहे—वाचाल, क्षुद्र, स्तब्ध, मर्त्य, मूर्ख आदि।

वाचालं बालिशं स्तब्धमज्ञं पण्डितमानिनम्।
कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य गोपा मे चक्रुरप्रियम्॥

(श्रीमद्भा० १०।२५।५)

देवराज इन्द्रकी आज्ञा पाकर **'मेघा निर्मुक्तबन्धनाः'** अर्थात् प्रलयके समय जल बरसानेवाले सांवर्तक आदि मेघसमूह बन्धनरहित कर दिये गये और वे प्रलयकालीन मेघ खम्भेके समान मोटी धारासे वर्षा करने लगे। साथ ही चारों ओर बिजलियाँ चमकने लगीं, बादल आपसमें टकराकर कड़कने लगे और प्रचण्ड आँधीकी प्रेरणासे वे बड़े-बड़े ओले बरसाने लगे। व्रजमण्डलमें हाहाकार मच गया तब **'गोपा गोप्यश्च शीतार्ता गोविन्दं शरणं ययुः'** गोप-गोपी सब भगवान् कृष्णकी शरणमें गये। तब भगवान् कृष्णने इन्द्रके मानका मर्दन करनेको गिरिराज गोवर्धनको छत्राकके समान बायें हाथकी कनिष्ठिका अँगुलीपर धारणकर सात दिनपर्यन्त वर्षासे रक्षाकर व्रजजनोंको अपने दर्शनसे आनन्दित किया। व्रजवासियोंको भूख-प्यास कुछ भी नहीं लगी। इन्द्रने दूतोंसे पूछा—'व्रजमें कितने मरे?' दूतोंने कहा—'महाराज, व्रजमें तो एक चींटी भी नहीं मरी। सभी व्रजवासी सुरक्षित उत्सव मना रहे हैं।' भगवान् श्रीकृष्णकी महिमाको जानकर इन्द्रने लज्जित होकर वर्षा बन्द कर दी और भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें जाकर स्तुति करने लगा—

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने।
वासुदेवाय कृष्णाय सात्वतां पतये नमः॥

भगवन्! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप सर्वान्तर्यामी पुरुषोत्तम तथा सर्वात्मा वासुदेव हैं। आप यदुवंशियोंके एकमात्र स्वामी, भक्तवत्सल एवं सबके चित्तको आकर्षित करनेवाले हैं। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ।

भगवान् कृष्णने इन्द्रके अपराधको क्षमा कर दिया। तब इन्द्र गोमाता सुरभिके साथ भगवान्‌की प्रसन्नता प्राप्त करनेको उपस्थित हुआ। गोमाता सुरभिने अपनी सन्तानोंके साथ गोपालकृष्णकी वन्दना की और उनसे कहा—सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण! आप महायोगी—योगेश्वर हैं। आप स्वयं विश्व हैं, विश्वके परम कारण हैं, अच्युत हैं। सम्पूर्ण विश्वके स्वामी आपको अपने रक्षकके रूपमें प्राप्तकर हम सनाथ हो गयीं। आप जगत्‌के स्वामी हैं, परंतु हमारे तो परम पूजनीय आराध्यदेव ही हैं। प्रभो! इन्द्र त्रिलोकीके इन्द्र हुआ करें, परंतु हमारे इन्द्र तो आप ही हैं, अतः आप ही गौ, ब्राह्मण, देवता और साधुजनोंकी रक्षाके लिये हमारे इन्द्र बन जाइये। हम गौएँ ब्रह्माजीकी प्रेरणासे आपको अपना इन्द्र मानकर अभिषेक करेंगी। विश्वात्मन्! आपने पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही अवतार धारण किया है—

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वसम्भव।
भवता लोकनाथेन सनाथा वयमच्युत॥
त्वं नः परमकं दैवं त्वं न इन्द्रो जगत्पते।
भवाय भव गोविप्रदेवानां ये च साधवः॥
इन्द्रं नस्त्वाभिषेक्ष्यामो ब्रह्मणा नोदिता वयम्।
अवतीर्णोऽसि विश्वात्मन् भूमेर्भारापनुत्तये॥

(श्रीमद्भा० १०। २७। १९—२१)

भगवान् श्रीकृष्णसे ऐसा कहकर कामधेनुने अपने दूधसे और देवमाताओंकी प्रेरणासे देवराज इन्द्रने ऐरावतकी सूँड़के द्वारा लाये हुए आकाशगंगाके जलसे देवर्षियोंके साथ यदुनाथ श्रीकृष्णका अभिषेक किया और उन्हें 'गोविन्द' नामसे सम्बोधित किया—

इन्द्रः सुरर्षिभिः साकं नोदितो देवमातृभिः।
अभ्यषिञ्चत दाशार्हं गोविन्द इति चाभ्यधात्॥

साधनोपयोगी पत्र

(१)

भजन—साधन और साध्य

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण! भजन-साधनकी स्थिति लिखी, सो ठीक है। जब सत्त्वगुणका आधिक्य होता है, तब भजन अधिक होता है। रजोगुणकी अधिकतासे सांसारिक कार्योंमें विशेष मन लगता है और तमोगुणमें आलस्यकी प्रधानता रहती है। गुण अनेकों कारणोंसे घटते-बढ़ते रहते हैं—पूर्वसंस्कार, प्रारब्ध, वातावरण, अन्न, जल, संग, अध्ययन आदि अनेकों कारण हैं।

विषयोंमें मन अनादिकालसे उलझा है। बड़ा अभ्यास है विषय-चिन्तन और विषयसेवनका। असंख्य जीवनोंका यह अभ्यास यदि एक मानवजीवनमें बदल जाय तो भगवान्‌की बड़ी कृपा समझनी चाहिये। कुछ महीनों या वर्षोंमें पूरा लाभ न हो तो निराश नहीं होना चाहिये।

सत्संग, शुद्ध वातावरण, भजन आदिमें लाभ तो हुआ ही है। यह तो मानना ही पड़ेगा। यह ठीक है कि पूरी तत्परता नहीं आयी और न पूरी इच्छा ही हुई भगवान्‌की ओर बढ़नेकी। करते चले जाइये—भजन। तत्परता आप ही आयेगी और जब पूरी इच्छा हो जायगी, तब तो फिर कुछ करना शेष नहीं रह जायगा। पूरी इच्छा होनेकी ही देर है। पूरी इच्छा होनेपर भगवान् तत्काल ही उसे पूरी (सफल) भी कर देते हैं। बात सुननेसे ही काम नहीं चलता, सुननेके साथ ही करना चाहिये। करते-करते कभी-न-कभी काम बन ही जायगा। बस, ऐसी बात यह एक ही है। करते जाइये और विश्वास कीजिये, निश्चय कीजिये कि काम बन ही जायगा।

राम राम रटते रहो जब लग घट में प्रान।
कबहूँ दीनदयाल के भनक परेगी कान॥

भजन करते-करते जब भजनका बाह्य भाव न रहकर बिलकुल आन्तरिक हो जायगा, भजनमें मन रमेगा, उसमें आनन्दकी उपलब्धि होगी, तब यथार्थ भजन होगा। एक भजन होता है साधनरूप, एक होता है साध्य। अभी साधनरूप भजन भी पूरा नहीं हो पाया है। साधनरूप भजन करते-करते जब वह स्वाभाविक होकर अन्तरसे होने लगेगा, जब माला-नियमकी जरा भी जरूरत नहीं रहेगी, अपने-आप ही भजनमें मन लगा रहेगा, तब उसे साध्यरूप प्राप्त होगा; फिर छूटेगा नहीं। यह स्थिति इसी जन्ममें हो सकती है। आपके मनमें भगवत्कृपापर—भगवान्‌की अचिन्त्य दयाशक्तिपर विश्वास होना चाहिये। मनमें विश्वास करके जैसे बने वैसे ही, लगनसे-बेलगनसे भजन करते जाइये। भगवत्-कृपासे आप ही कल्याण होगा। भगवत्कृपा और भजनकी महान् शक्तिके सम्बन्धमें जरा भी सन्देह न आने दें। शेष प्रभुकृपा।

(२)

नाम-जपकी महत्ता

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। स्थिति लिखी सो ठीक है। सच्ची बात यह है कि डटकर भजन नहीं बनता। भजन बने बिना विषयोंमें आसक्तिरूप अन्त:करणका दोष नष्ट नहीं होता और जबतक विषयसक्ति रहती है, तबतक मन्दिरमें बैठकर ठाकुरजीकी पूजा करनेमें भी विषय ही ठाकुरजी बने रहते हैं; इसलिये वह भगवत्पूजन न होकर प्रकारान्तरसे विषयसेवन ही होता है। फिर दूकान-कारखाने आदिके काममें तो भगवद्बुद्धि होना बहुत कठिन है। भूलसे कभी-कभी मान लेते हैं—भगवत्सेवन हो रहा है; परन्तु हृदयके भीतर घुसकर देखनेपर पता चलता है—शुद्ध विषय-सेवन ही है। होना चाहिये जगत्‌का विस्मरण होकर एकमात्र भगवान्‌का स्मरण, होता है भगवान्‌का विस्मरण होकर विषयोंका स्मरण। यही हालत है। कलियुग है। वातावरण बहुत अशुद्ध है। सभी क्षेत्रोंमें दम्भ, दूकानदारी, दिखौआपन आ गया है। अतएव भजनके सिवा और कोई भी उपाय नजर नहीं आता। मन लगे-न-लगे किसी प्रकार भी यदि चौबीस घंटेमें सब मिलकर अठारह घंटे नामजप होता रहे तो उसके

लिये चेष्टा करनी चाहिये। भक्त लोग तो आठ पहरमें साढ़े सात पहर भजन किया करते थे। श्रीचैतन्यचारितामृतमें कहा है—

साढ़े सात पहर जाय भक्तिरसाधने।
चारि दण्ड विश्राम ताओ नाहे कोनो दिने॥

न काम छोड़कर अलग बैठ सकते हैं, बैठनेसे भी क्या होगा? भजनका अभ्यास न होगा तो नींद, आलस्य और प्रमादमें समय बीतेगा। अब जहाँ बड़े-बड़े कामोंके लिये राग-द्वेष होते हैं फिर छोटी-छोटी बातोंके लिये होने लगेंगे। घर बड़ा हो या छोटा—है घर ही, और राग-द्वेष अपने साथ हैं ही। कहीं भी चले जायँ, कितनी ही बड़ी या छोटी-से-छोटी दुनियामें रहें, ये राग-द्वेष अपना काम करते ही रहेंगे। अतएव अभी जिस दुनियामें हैं, इसीमें रहकर नामजप बढ़ाना चाहिये। बस, इसके लिये लाज-शरम छोड़कर अभ्यास डालना चाहिये। मुँहसे उच्चारण होता ही रहे। नामजप होता रहेगा तो नामके प्रभावसे बाकी बातें आप ही हो जायँगी। न होंगी तो भी आपत्ति नहीं। यदि भगवान्‌का नाम जपते-जपते मृत्यु हो जायगी तो भी जीवन सफल ही है। अधिक क्या लिखूँ!

सबसे यथायोग्य सप्रेम हरिस्मरण कहियेगा। भजन जैसा चाहता हूँ, बनता नहीं है। चेष्टा कर रहा हूँ। भगवत्कृपापर भरोसा है। अपनेमें तो कोई बल है नहीं। शेष प्रभुकृपा।

(३)

आवश्यक साधन

सप्रेम हरिस्मरण। आपको पत्र लिखनेमें कोई संकोच नहीं करना चाहिये। मेरा तो आप सबके प्रति एक-सा ही भाव होना चाहिये। आपकी दिनचर्या मालूम हुई—बहुत ठीक है। इसी प्रकार करते रहिये। आपके लिखनेके अनुसार आप निरन्तर नाम-स्मरणका ख्याल रखते ही हैं। कभी-कभी कामके झंझटसे भूल जाते हैं, सो ऐसी भूल तो स्वाभाविक ही हो जाया करती है। विशेष ख्याल रखनेसे भूल कम होगी।

'निरन्तर भगवान्‌का नामस्मरण होता रहे'—इससे बढ़कर और क्या करना है। निरन्तर नामका स्मरण ही भगवान्‌का सान्निध्य प्राप्त करानेमें पूर्ण समर्थ है। पाँच बातोंका ख्याल रखिये—

(१) पापकर्म (कम-से-कम शरीरसे तो) न हो।
(२) व्यर्थ चर्चा न हो।
(३) किसीके साथ बुरा बर्ताव न हो।
(४) भगवान्‌के नामचिन्तनकी विशेष चेष्टा रहे।
(५) भगवत्कृपापर विश्वास हो।

श्रीविष्णुभगवान्‌की उपासना करते हैं, सो बहुत उत्तम है। ध्यानके लिये समय कम मिलता है, जो कुछ कभी मिलता है—वह दूसरे-दूसरे चिन्तनमें बीत जाता है, लिखा सो ठीक है। नाम-स्मरण यदि होता रहे तो वह ध्यान ही है।

पाप न हो, विषय-चिन्तन न हो, आलस्य-प्रमादमें समय न बीते, संसारका मोह न हो, एकमात्र भगवच्चिन्तनमें लगे हुए ही सब काम हों—आपकी ये सभी कामनाएँ बहुत ही सराहनीय तथा अत्यन्त उत्तम हैं। परंतु मेरे कुछ लिख देनेसे ही ये पूरी हो जायँगी, ऐसी बात नहीं है। आप इनकी आवश्यकता पूरा अनुभव करेंगे और भगवत्कृपाका विश्वास करके अध्यवसायमें लग जायँगे तब भगवत्कृपासे ही ये पूरी होंगी। इसके लिये आप श्रीभगवान्‌से प्रार्थना कीजिये। मुझको लिखनेमें तो संकोच भी करते हैं और मैं इन्हें पूरी करनेमें समर्थ भी नहीं हूँ। भगवान्‌से निस्संकोच अपनी ही भाषामें मन-ही-मन कातर प्रार्थना कीजिये। चाहे दिनमें सौ बार कीजिये। भगवान् प्रार्थना सुनते हैं—यह निश्चय है। इतना मेरे कहनेपर विश्वास कीजिये, उनकी कृपासे मनुष्य जिसको असम्भव समझता है, वह भी सम्भव हो सकता है।

श्रीविष्णुभगवान्‌के ध्यानका प्रसंग 'श्रीप्रेमभक्ति-प्रकाश' में बहुत ही सुन्दर है, उसको पढ़िये।

जब मनमें आवे, तभी निस्संकोच पत्र लिखकर जो कुछ पूछना हो, पूछिये। मेरा उत्तर यदि कुछ देरसे जाय तो क्षमा अवश्य कीजिये। शेष प्रभुकृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७४, शक १९३९, सन् २०१७, सूर्य दक्षिणायन, शरद्-ऋतु, कार्तिक कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें १०।५४ बजेतक	शुक्र	रेवती रात्रिमें ९।१२ बजेतक	६अक्टूबर	**मेषराशि** रात्रिमें ९।१२ बजेसे, **पंचक समाप्त** रात्रिमें ९।१२ बजे।
द्वितीया ,, ९।२० बजेतक	शनि	अश्विनी ,, ८।२२ बजेतक	७ ,,	**मूल** रात्रिमें ८।२२ बजेतक।
तृतीया ,, ७।२५ बजेतक	रवि	भरणी ,, ७।१२ बजेतक	८ ,,	**भद्रा** दिन ८।२३ बजेसे रात्रिमें ७।२५ बजेतक, **वृषराशि** रात्रि १२।५० बजेसे, **संकष्टी (करवाचौथ) श्रीगणेशचतुर्थीव्रत,** चन्द्रोदय रात्रि ७।५० बजे।
चतुर्थी सायं ५।१७ बजेतक	सोम	कृत्तिका सायं ५।४७ बजेतक	९ ,,	× × ×
पंचमी दिनमें २।५८ बजेतक	मंगल	रोहिणी ,, ४।११ बजेतक	१० ,,	**मिथुनराशि** रात्रिमें ३।२१ बजेसे।
षष्ठी ,, १२।३५ बजेतक	बुध	मृगशिरा दिनमें २।३२ बजेतक	११ ,,	**भद्रा** दिनमें १२।३५ बजेसे रात्रिमें ११।२२ बजेतक, **चित्राका सूर्य** दिनमें ९।२७ बजे।
सप्तमी ,, १०।११ बजेतक	गुरु	आर्द्रा ,, १२।५३ बजेतक	१२ ,,	**कर्कराशि** रात्रिशेष ५।४१ बजेसे, **अहोईव्रत।**
अष्टमी प्रात: ७।५० बजेतक	शुक्र	पुनर्वसु ,, ११।१७ बजेतक	१३ ,,	× × ×
दशमी रात्रिमें ३।४१ बजेतक	शनि	पुष्य ,, ९।५३ बजेतक	१४ ,,	**भद्रा** सायं ४।४० बजेसे रात्रिमें ३।४१ बजेतक, **मूल** दिनमें ९।५३ बजेसे।
एकादशी ,, २।४ बजेतक	रवि	आश्लेषा ,, ८।४२ बजेतक	१५ ,,	**सिंहराशि** दिनमें ८।४२ बजेसे, **रम्भाएकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी रात्रिमें १२।४६ बजेतक	सोम	मघा प्रात: ७।५३ बजेतक	१६ ,,	**गोवत्सद्वादशी, मूल** प्रात: ७।५३ बजेतक।
त्रयोदशी ,, ११।५५ बजेतक	मंगल	पू०फा० ,, ७।२३ बजेतक	१७ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ११।५५ बजेसे, **कन्याराशि** दिनमें १।२२ बजेसे, **भौमप्रदोषव्रत, धन्वन्तरि-जयन्ती, धनतेरस, नरकचतुर्दशीव्रत।**
चतुर्दशी ,, ११।३३ बजेतक	बुध	उ०फा० ,, ७।२० बजेतक	१८ ,,	**भद्रा** दिनमें ११।४४ बजेतक, **हनुमज्जयन्ती।**
अमावस्या ,, ११।४२ बजेतक	गुरु	हस्त ,, ७।४६ बजेतक	१९ ,,	**तुलाराशि** रात्रिमें ८।१५ बजेसे, **अमावस्या, दीपावली।**

सं० २०७४, शक १९३९, सन् २०१७, सूर्य दक्षिणायन, शरद-ऋतु, कार्तिक शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें १२।२३ बजेतक	शुक्र	चित्रा दिनमें ८।४३ बजेतक	२०अक्टूबर	**काशीसे अन्यत्र गोवर्धनपूजा, अन्नकूट।**
द्वितीया ,, १।३१ बजेतक	शनि	स्वाती ,, १०।१० बजेतक	२१ ,,	**वृश्चिकराशि** रात्रिशेष ५।३४ बजेसे, **काशीमें गेवर्धनपूजा, भैयादूज, यमद्वितीया।**
तृतीया ,, ३।८ बजेतक	रवि	विशाखा ,, १२।४ बजेतक	२२ ,,	× × ×
चतुर्थी रात्रिशेष ५।३ बजेतक	सोम	अनुराधा ,, २।१९ बजेतक	२३ ,,	**भद्रा** सायं ४।६ बजेसे रात्रिशेष ५।३ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, सायन वृश्चिक**का सूर्य रात्रिमें १।२० बजे, **मूल** दिनमें २।१९ बजेसे।
पंचमी अहोरात्र	मंगल	ज्येष्ठा सायं ४।४९ बजेतक	२४ ,,	**धनुराशि** सायं ४।४९ बजेसे, **स्वाती**का सूर्य रात्रिमें ७।८ बजे।
पंचमी प्रात: ७।९ बजेतक	बुध	मूल रात्रिमें ७।२७ बजेतक	२५ ,,	**मूल** रात्रिमें ७।२७ बजेतक।
षष्ठी दिनमें ९।१७ बजेतक	गुरु	पू०षा० ,, १०।१० बजेतक	२६ ,,	**मकरराशि** रात्रिमें ४।३५ बजेसे, **श्रीसूर्यषष्ठीव्रत।**
सप्तमी ,, ११।१४ बजेतक	शुक्र	उ० षा० ,, १२।२० बजेतक	२७ ,,	**भद्रा** दिनमें ११।१४ बजेसे रात्रिमें १२।४ बजेतक।
अष्टमी ,, १२।५४ बजेतक	शनि	श्रवण ,, २।१९ बजेतक	२८ ,,	**गोपाष्टमी।**
नवमी ,, २।८ बजेतक	रवि	धनिष्ठा ,, ३।५२ बजेतक	२९ ,,	**कुम्भराशि** दिनमें ३।६ बजेसे, **पंचकारम्भ** दिनमें ३।६ बजेसे, **अक्षयनवमी।**
दशमी ,, २।५६ बजेतक	सोम	शतभिषा रात्रिशेष ४।५५ बजेतक	३० ,,	**भद्रा** रात्रिमें ३।२ बजेसे।
एकादशी दिनमें ३।११ बजेतक	मंगल	पू० भा० ,, ५।२९ बजेतक	३१ ,,	**भद्रा** दिनमें ३।३१ बजेतक, **मीनराशि** रात्रिमें ११।२१ बजेसे, **प्रबोधिनी एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी ,, २।५४ बजेतक	बुध	उ०भा० ,, ५।३३ बजेतक	१ नवम्बर	**प्रदोषव्रत, तुलसीविवाह, मूल** रात्रिशेष ५।३३ बजेसे।
त्रयोदशी ,, २।८ बजेतक	गुरु	रेवती ,, ५।९ बजेतक	२ ,,	**मेषराशि** रात्रिशेष ५।९ बजेसे, **श्रीवैकुण्ठ चतुर्दशीव्रत, पंचक** समाप्त रात्रिशेष ५।९ बजे।
चतुर्दशी ,, १२।५८ बजेतक	शुक्र	अश्विनी रात्रिमें ४।२४ बजेतक	३ ,,	**भद्रा** दिनमें १२।५८ बजेसे रात्रिमें १२।११ बजेतक, **मूल** रात्रिमें ४।२४ बजेतक, व्रतपूर्णिमा।
पूर्णिमा ,, ११।२४ बजेतक	शनि	भरणी ,, ३।१८ बजेतक	४ ,,	**कार्तिकपूर्णिमा,** गुरुनानक-जयन्ती।

कृपानुभूति

प्रभुकी कृपा

'यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्' अर्थात् मिट्टीके बनते हुए बर्तनमें जो चित्र खींच दिया जाता है, वह चित्र कभी नहीं मिटता। इसी प्रकार बचपनमें बाल मनपर जो संस्कार पड़ जाते हैं, वे अमिट हो जाते हैं। 'कल्याण' पत्रिकाके मेरे पिताजी आजीवन सदस्य थे, अतः बचपनसे ही मैं इसे पढ़ता आ रहा हूँ। इससे मेरे जीवनमें यह संस्कार बन गया कि मैं कोई भी कार्य करता रहता हूँ, पर मेरा भगवत्स्मरण और भगवन्नाम-जप मन-ही-मन चलता रहता है। वर्तमानमें मैं सत्तर वर्षीय वृद्ध हूँ, लगभग दस वर्ष पूर्व प्रधानाचार्य पदसे सेवानिवृत्त हो चुका हूँ, पर बचपनसे जो नाम-स्मरणका संस्कार पड़ा, वह आज भी विद्यमान है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि जब अपनी शक्ति और बुद्धि कार्य नहीं करती तो हम जिन सर्वसमर्थ प्रभुके नामका स्मरण कर रहे होते हैं, वे ही किसी-न-किसी रूपमें आकर हमारी रक्षा करते हैं। ऐसी ही एक घटना मेरे साथ भी हुई, जो इस प्रकार है—

लगभग तीन वर्ष पूर्वकी बात है, मैं अपने भतीजेके यहाँ होनेवाले 'अखण्ड रामायण' की कथामें भाग लेने शाहजहाँपुर गया था। वहाँ सम्पूर्ण कार्यक्रमके समापनके बाद रेलद्वारा वापस हरदोई आ गया। गाड़ीसे उतरनेके बाद मुझे रेलवे पुलसे बाहर आना चाहिये था, किंतु घुटनोंमें दर्द तथा वृद्ध होनेकी वजहसे मैंने पुलसे जाना उचित नहीं समझा।

रात्रिके ८ बजे थे। वैसे तो मैं नियमोंका हमेशा पालन करता हूँ तथा दूसरोंको भी नियम-पालन करनेको कहता हूँ, परंतु मजबूरीके कारण आज मैं स्वयं नियम तोड़ते हुए रेलवे लाइन पार करने लगा। अन्तिम लाइनका प्लेटफार्म कुछ ऊँचा था, अतः लाइनके दोनों ओर देखकर कि कोई गाड़ी तो नहीं आ रही, मैं तुरंत प्लेटफार्मपर चढ़ गया और किनारे बैठ गया। उठनेके लिये जैसे ही खड़ा हुआ कि मेरा सन्तुलन बिगड़ गया और मैं पटरीपर आ गिरा। तुरंत अपनेको सँभालकर पुनः जैसे ही प्लेटफार्मपर बैठा ही था कि न जाने कैसे दो व्यक्ति मेरे पास आये। एकने बायीं भुजा दूसरेने दायीं भुजा पकड़ी और मुझे बड़ी तेजीसे घसीटते हुए प्लेटफार्मके बहुत दूर अन्ततक ले गये। घसीटते समय मैं अत्यन्त क्रोधमें था एवं उन्हें भला-बुरा कह रहा था। मेरी नयी पैण्ट भी घिसकर फट गयी।

जैसे ही प्लेटफार्मके अन्तिम छोरपर मुझे उन्होंने छोड़ा कि एकाएक बहुत तेज रफ्तारसे एक नानस्टाप ट्रेन गुजरी। मैं यह देखकर एकदम सन्न रह गया। साथ ही मुझे यह सोचकर बहुत ग्लानि हो रही थी कि वहाँ उपस्थित लोग मेरे बारेमें क्या-क्या बातें कर रहे होंगे।

अब जब मैंने अपनेको स्थिर महसूस किया तो मुझे उन दोनों व्यक्तियोंकी याद आयी कि यदि उन्होंने ठीक समयपर मेरी रक्षा न की होती तो शायद मैं आज जिन्दा न होता; क्योंकि उस ट्रेनकी रफ्तार लगभग १५० किमी० प्रति घण्टा थी। यदि वे दोनों प्लेटफार्मपर मुझे बहुत दूर घसीट न ले जाते तो ट्रेनकी रफ्तारके कारण तेज हवाके झोंकेसे मैं अपने वृद्ध शरीरको सँभाल न पाता और पटरियोंके नीचे चला जाता।

मेरा पूरा विश्वास है कि वे ईश्वरद्वारा ही प्रेरित थे। वे दोनों निश्चय ही परमात्माके दूत होंगे। मैं मन-ही-मन प्रभुको धन्यवाद देने लगा। सचमें प्रभुकी लीलाका बखान करना मनुष्यके वशकी बात नहीं होती; क्योंकि उस समय जितने कम समयमें यह सब हुआ और मेरी रक्षा हुई, वह बिना प्रभुकी कृपाके हो ही नहीं सकती। शायद यह सब कृपा 'कल्याण' के पढ़नेसे हुई, क्योंकि उसे पढ़नेसे अवश्य ही शुभ संस्कार बनते हैं। उनके लेखोंकी छाप मनपर पड़ती है, इसी कारण तो मैं जब शाहजहाँपुरसे चला था तो पूरे रास्तेमें भगवन्नामका जप करता आया और भगवान्ने मेरी जीवनरक्षा की। जय प्रभु, जय भगवान्, जय कल्याण!—**कृष्णचन्द्र मिश्रा**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

संकल्पकी शक्ति

लगभग बीस वर्षोंसे उत्तर-काशीमें प्रवास करते हुए मुझे कई अद्भुत लोगों और संतोंके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ। अपने-आपमें एक अलौकिक सुखकी अनुभूति करानेवाले उन प्रसंगोंको लिपिबद्ध करनेके पीछे एकमात्र वासना है, पाठकोंको उस सुखकी किंचित् अनुभूति करा सकूँ। ये घटनाएँ सन् १९९४ ई० से सन् २००७ ई०के दरम्यानकी हैं। इनमेंसे एक घटना एक दिव्यांग व्यक्तिसे सम्बन्धित है, जिसके दोनों हाथ एक दुर्घनामें कट गये थे, परंतु उसने अपनी इस शारीरिक अक्षमताको भी प्रभुका कृपाप्रसाद ही माना और अपनी दृढ़ संकल्प-शक्तिके बलपर गंगोत्रीसे जल ले जाकर भगवान् रामेश्वरका अभिषेक किया। उसकी संकल्प-शक्ति, विनम्रता, ईश्वरनिष्ठा, अकिंचनवृत्ति और सत्साहस उसे सामान्य मानवसे महान् आत्माकी कोटिमें ले जाते हैं। घटना इस प्रकार है—

सन् २००४ या २००५ की बात है, दैनन्दिनी लिखनेकी आदत नहीं थी, इसलिए स्मृतिका सहारा लेनेको बाध्य हूँ। प्रात:कालकी पावन बेला, पतितपावनी गंगाके सुरम्य तटपर टहलते समय, सामनेसे आते हुए एक व्यक्तिपर नजर गयी। लम्बे कदके उस मनुष्यका शरीर माथेतक कम्बलसे ढका हुआ था, गलेमें एक लोटा लटक रहा था। पास आनेपर देखा कि उसके दोनों हाथ कोहनीतक कटे हुए हैं। गंगाकी धाराके साथ लय मिलाता हुआ वह व्यक्ति धीमी चालसे गंगोत्रीकी तरफ जा रहा था। मेरे अभिवादन करनेपर भी वह रुका नहीं, कोई प्रतिक्रियातक नहीं दिखायी, यन्त्रचालित-सा चलता रहा। उसकी अविराम गति और तालबद्धतामें एक अजीब-सा आकर्षण था। मैं स्वयंको रोक नहीं पाया, उसके पीछे मैं भी गंगोत्रीकी तरफ मुड़ गया। उसके नजदीक पहुँचकर मैंने उससे पूछा—'बाबा! गंगोत्रीतक पैदल यात्रा करनेमें आपको दो-तीन दिन लग जायँगे। हाथ न होनेके कारण भी आपको बड़ी असुविधा हो रही होगी, अगर बससे जानेकी व्यवस्था हो जाय तब आप आज शामतक गंगोत्री पहुँच जायँगे।' उस व्यक्तिने जवाब दिया—'बाबू! मेरा नाम राधेश्याम है। मैं एक कारखानेमें मजदूरका काम करता था, दुर्घटनावश आरा मशीनमें मेरे दोनो हाथ कट गये। ईश्वरकी यही इच्छा रही होगी, मैंने किसीको कोई दोष नहीं दिया। भाग्यके इस लेखको ऊपरवालेकी मर्जी समझकर स्वीकार कर लिया, साथ ही यह संकल्प भी किया कि हाथ नहीं रहे तो क्या हुआ, पैर तो उसकी दयासे सलामत हैं, इसलिये मैं पैदल ही गंगोत्रीकी यात्रा करूँगा और वहाँसे गंगाजल लाकर रामेश्वरम् जाऊँगा तथा भगवान् शिवका अभिषेक करूँगा। एक दिव्यांगका यह संकल्प सुनकर लोग हँसते हैं, इसलिये मैंने सबकुछ हरि-इच्छापर छोड़ दिया और स्वस्थ होते ही अपनी यात्रापर चल पड़ा। मैं हरिद्वारसे पैदल ही चला आ रहा हूँ, और ईश्वर चाहेगा तो गंगोत्रीतककी यात्रा भी किसी-न-किसी प्रकार पैदल ही कर लूँगा।'

उसकी बात सुनकर मेरे मनमें रोमांच-सा हो आया। मैंने उसे कुछ पैसे देने चाहे, रास्तेमें कुछ चाय-पान आदिके खर्चके लिये। मगर उसने लेनेसे इनकार कर दिया, बोला—'बाबू! पैसोंकी जरूरत ही नहीं पड़ती है, आवश्यकता होती है तब राहमें किसी दुकानके सामने खड़ा हो जाता हूँ, प्रभुकी प्रेरणासे बिना माँगे ही कोई यात्री अथवा भला दुकानदार चाय पिला देता है, अथवा जलपान करा देता है। मैं पूछे बिना नहीं रह सका कि बिना हाथके वह कैसे चाय पी पाता है! उसने अपनी दोनों कोहनियोंको जोड़कर दिखाया। कहा कि इसी प्रकार मैं ग्लासको थाम लेता हूँ। शुरू-शुरूमें कुछ महीनोंतक असुविधा होती थी, किंतु अब पूर्ण अभ्यास हो गया है। किसी प्रकारकी अड़चन नहीं होती है। मेरे विशेष आग्रह करनेपर उस व्यक्तिने वापसीकी यात्रामें मेरे पास उत्तरकाशीमें कुछ दिन ठहरनेका वचन दिया। ऐसा उसने मेरे आग्रहका सम्मान रखनेके लिये किया होगा, सम्भवत: उसका इरादा मेरे पास ठहरनेका नहीं

रहा होगा। दो सप्ताह गुजर गये। दैवी कृपा ही थी कि उस दिन मैं गंगातटपर टहल रहा था, तभी सामनेसे आता हुआ राधेश्याम दिखायी पड़ा। मेरे साथ मेरे घरतक आनेके आग्रहको वह टाल नहीं पाया। वह अति प्रसन्न था, बोला—'बाबू! ठाकुरकी कृपासे मेरे जीवनकी मुराद पूरी हो गयी।' गंगामैयाने गंगोत्रीके पवित्र जलमें स्नान कराया, और लौटानीमें बाबा रामेश्वरम् शिवके अभिषेकहेतु जल भी दिया। मुझे भी उसने आचमनहेतु कुछ जल दिया। पाँच-सात दिनतक उसने मेरा आतिथ्य स्वीकारकर मुझे उपकृत किया। उसकी दिनचर्या और जीवनकी बातोंसे मेरे मनमें ईश्वरके प्रति अगाध आस्था उत्पन्न हो गयी। मुझे दो बातोंका ज्ञान हुआ। पहली बात यह कि इंसानको उसके कर्मोंके अनुसार भगवान् कष्ट तो देते हैं, मगर उसीके अनुपातमें कष्टको सहनेकी शक्ति भी प्रदान करते हैं। दूसरी बात यह कि ईश्वर जब हमसे कुछ वापस लेता है तब उसे सजा नहीं समझना चाहिये, बल्कि यह समझना चाहिये कि वह हमें उससे भी बेहतर कुछ और देना चाहता है। हाथ रहते शायद राधेश्याम गंगोत्रीकी यात्राके बारेमें सोचतातक नहीं, आरा मशीनमें ही लगा रहता। भगवान्ने दो हाथ ले लिये और बदलेमें सौ हाथों-जैसा हौसला दे दिया। यह उसकी कृपा नहीं तो क्या थी!

कभी-कभी साधारण लगनेवाले मनुष्योंके जीवन और उनके अनुभवोंसे संत-महात्माओंके उपदेशों-जैसी प्रेरणा प्राप्त होती है। राधेश्यामके साथ गुजारे गये गिनतीके दिनोंमें मुझे अपने जीवनकी कई उलझनोंके सहज ही सुलझने और समझनेकी दिशा प्राप्त हुई, इसे भी मैं ईश्वरीय विधान मानता हूँ। राधेश्यामके विदा होते समय मेरा सचिव उसे बसमें बैठाने गया और रामेश्वरम्की यात्राहेतु टिकट आदिका कुछ पैसा देने लगा। राधेश्याम बोला कि हम दिव्यांगोंका रेल-बस भाड़ा नहीं लगता है। मैंने उसे कुछ रुपये रामेश्वरम्-मन्दिरके दानपात्रमें डालनेके लिये दिये। अपना पता लिखा हुआ एक पोस्टकार्ड भी दिया। करीब बीस दिन बाद किसीसे लिखाया हुआ राधेश्यामका वही पोस्टकार्ड मुझे वापस प्राप्त हुआ। उसने लिखा था कि बाबूजी, मैं आनन्दपूर्वक यहाँ पहुँच गया हूँ। मैंने भगवान् शिवका अभिषेक किया और आपकी दी हुई राशि दानपात्रमें डाल दी है। राधेश्याम मरहौराका रहनेवाला था, जाते समय मैंने उससे आग्रह किया था कि रामेश्वरम्से लौटकर वह मेरे पास आकर रहे। मगर उसने मुसकराकर टाल दिया, कहा—'***जाही बिधि राखे राम, ताही बिधि रहिये,***' भगवान् जब, जहाँ और जैसे रखना चाहता है, वैसे ही रहनेमें मनुष्यका कल्याण होता है। एक सरल साधारण इन्सानके सूखे हुए परंतु प्रफुल्लित चेहरेसे कही हुई वे बातें आज भी मेरे मानसमें अंकित हैं। उसके मुँहसे मुझे जैसे आज भी नानकदेव बोलते हुए नजर आते हैं—***मेरी रजा उसीमें जिसमें तेरी रजा है।*** —नन्दलाल टांटिया

(२)

करनीका फल

सुपर फास्ट रेलगाड़ी दो मिनट रुकनेके बाद फुल स्पीड पकड़ चुकी थी। शयनयान कोचमें आरक्षित सीटपर बैठा कर्मा बहुत ही हर्षोल्लाससे अपनी यात्रा कर रहा था। अटैची, बैग, भारी सामान आदि सुरक्षित करके वह बहुत खुश होकर स्वप्नवत् यात्रा कर रहा था। मोटी रकमकी गड्डियाँ अटैचीमें तो भरी थीं ही, साथ ही कर्माने सभी जेबोंमें भी ठूँस-ठूँसकर रुपये भर रखे थे। अपर अधिकारियोंको खुश करके कर्मा लगभग दो दर्जन शराबकी बोतलें भी लेकर जा रहा था। पूरे एक साल बाद वह छुट्टीपर जा रहा था। उसे रह-रहकर घर पहुँचनेकी बेचैनी भी हो रही थी। उसकी कमाई तो नाजायज थी, पर बार-बार वह यह सोचकर मन-ही-मन प्रफुल्लित हो उठता कि आनेवाले त्योहारपर दोस्तोंके साथ खूब मौज-मस्ती करेगा और पत्नीको उपहार देगा, जिससे वह प्रसन्न हो जायगी।

दो दिन उपरान्त उसकी यात्रा पूरी हुई। वह स्टेशनपर उतरा और टैक्सीद्वारा घर पहुँचा। घर पहुँचते ही उसे पता चला कि आज ही सुबह बीबी बच्चोंसहित अपने मायके गयी है। यह जानकर कर्मा उदास हो गया, उसकी सारी योजना बेकार हो गयी। थके-माँदे उदास मनसे किसी प्रकार कर्माने रात गुजारी। दूसरे दिन सुबह-सुबह ही वह अपनी ससुरालके लिये रवाना हो गया। स्टेशनपर

पहुँचकर वह गाड़ीकी प्रतीक्षा कर ही रहा था कि तभी उसकी नजर स्टेशनपर लगे टी०वी० सेटमें प्रसारित हो रहे समाचारपर पड़ी। समाचार-वाचक कह रहा था कि कल सुबह दस बजे यहाँसे लगभग दस कि०मी० की दूरीपर पुलके मोड़पर यात्रियोंसे खचाखच भरी बसको आतंकियोंने बमसे उड़ा दिया। बसके परखचे उड़ गये। औरतों एवं बच्चोंको मिलाकर कुल बीस लोगोंकी मृत्यु हो गयी। घायलोंको अस्पतालमें भर्ती कराया गया है। आतंकियोंको पकड़नेके लिये सघन तलाश जारी है, सुरक्षाबलोंने एक आतंकीको मार गिराया है एवं दो आतंकियोंकी तलाश जारी है। फिर टी०वी० पर रेखाचित्र दिखाया जाने लगा, जो उन्हीं दो खूँखार आतंकियोंके थे। बताया जा रहा था कि इनके आस-पासके जंगलोंमें छिपे होनेकी सम्भावना है। यदि किसी व्यक्तिको ये दिखायी दें तो तुरंत पुलिसको सूचित करें।

रेखाचित्र बार-बार दिखाये जा रहे थे। अब कर्मा एकदम चौकन्ना हो गया। उसका चेहरा पीला पड़ने लगा। सच तो यह था कि कर्माने ही दो-तीन दिन पहले भारी रिश्वत लेकर उन आतंकियोंको देशमें घुसने दिया था।

बहरहाल वह ससुराल पहुँचा। घरपर भारी भीड़ एवं रोना-पीटना हो रहा था। चारों ओर कोहराम मचा था। फिर कर्माको बताया गया कि कलकी बसकी घटनामें तुम्हारी बीबी और बच्चे खत्म हो गये। यह सुनते ही कर्मा दहाड़ मारकर रो पड़ा। ये क्या हुआ? कर्मा बर्बाद हो गया, बेहोश हो गया। बार-बार उसे यही याद आता कि उसने रिश्वत लेकर अपने ही परिवारको समाप्त कर दिया। साथ ही कई घर भी उसीके कारण बर्बाद हो चुके थे। अपने कियेको सोचकर कर्मा स्वयंको धिक्कारने लगा। आगे चलकर सरकारद्वारा इसकी गहन जाँच हुई, जिसमें कर्माका नाम आया और उसे देशद्रोहके जुर्ममें गिरफ्तार कर लिया गया।

कर्मापर केस चला। अन्तमें कर्माको मृत्युदण्डकी सजा सुनायी गयी। यह सुनकर कर्मा पागल हो गया। फिर कुछ ही दिनों बाद जेलमें ही वह मर गया और प्रशासनद्वारा लावारिस लाशकी भाँति भूमिमें दफन कर दिया गया।

मैं चाहता हूँ कि सभी नौजवान चाहे वे सिविल सर्विसमें हों या आर्मीमें हों, इस सच्ची घटनाको पढ़कर कर्मा नहीं बल्कि सुकर्मा बनें और अपने देशका गौरव बढ़ायें।

—**राजबहादुर शर्मा**

(३)

बच्चे मनके सच्चे

यह घटना २५ जून १९७७ ई० की है। श्रीबाला-प्रसादजी मिश्र रामनारायण उच्च विद्यालय केहूनियाके सहायक शिक्षक हैं। वे ट्यूशन पढ़ाने मेरे निवासस्थल गोबरौरा गाँव आया करते थे। उस दिन उनके पास चार सौ रुपये थे। ट्यूशन पढ़ाते समय उन्होंने इन रुपयोंको गिना। संयोगसे एक दस रुपयेका नोट वहीं गिर गया, पर किसीने उसे देखा नहीं। श्रीमिश्रजीको इसका तनिक भानतक न था कि उनका दस रुपयेका एक नोट कम हो गया है। लगभग दो घंटे पश्चात् मैं और मिश्रजी दोनों साथ-साथ वहाँसे चल दिये। कुछ दूर जानेके बाद एक ग्यारहवर्षीय लड़का, जो पाँचवें वर्गमें पढ़ता है, दस रुपयेके एक नोटके सहित दौड़ता हुआ आया। हमारे निकट पहुँचते ही मास्टर साहबसे वह बोला—'महाशय! यह अपना दस रुपयेका नोट ले लीजिये। यह वहाँ गिर गया था, आपका ही है, कृपया इसे ग्रहण करें।' शिक्षक महोदयने पूछा—'तुम यह किस आधारपर कहते हो कि यह दस रुपयेका नोट मेरा ही है?' लड़केने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया—'जहाँ आप हम लोगोंको पढ़ा रहे थे, वहाँ आपने अपने पासके रुपये गिने थे और यह नोट मुझे उसी स्थानपर पड़ा मिला है। इसलिये विश्वास करनेयोग्य है कि यह नोट निश्चित रूपसे आपहीका है।' श्रीमिश्रजीने तुरंत अपने रुपयोंको गिना तो सचमुच ही उसमें दस रुपये कम थे। उन्होंने उस लड़केसे नोट ले लिया। उस छोटे बच्चेकी ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा और तत्परता देखकर हम दोनों अत्यन्त प्रसन्न हुए और मुखसे अनायास ही निकल पड़ा—'बच्चे मनके सच्चे।' —**श्रीहृदयानन्द मिश्र 'प्रेमी'**

मनन करने योग्य

सच्ची क्षमा द्वेषपर विजय पाती है

राजा विश्वामित्र सेनाके साथ आखेटके लिये निकले थे। वनमें घूमते हुए वे महर्षि वसिष्ठके आश्रमके समीप पहुँच गये। महर्षिने उनका आतिथ्य किया। विश्वामित्र यह देखकर आश्चर्यमें पड़ गये कि उनकी पूरी सेनाका सत्कार कुटियामें रहनेवाले उस तपस्वी ऋषिने राजोचित भोजनसे किया। जब उन्हें पता लगा कि नन्दिनी गौके प्रभावसे ही वसिष्ठजी यह सब कर सके हैं तो उन्होंने ऋषिसे वह गौ माँगी। किसी भी प्रकार, किसी भी मूल्यपर ऋषिने गौ देना स्वीकार नहीं किया तो विश्वामित्र बलपूर्वक उसे छीनकर ले जाने लगे। परंतु वसिष्ठके आदेशसे नन्दिनीने अपनी हुंकारसे ही दारुण योद्धा उत्पन्न कर दिये और उन सैनिकोंकी मार खाकर विश्वामित्रके सैनिक भाग खड़े हुए।

राजा विश्वामित्रके सब दिव्यास्त्र वसिष्ठके ब्रह्मदण्डसे टकराकर निस्तेज हो चुके थे। विश्वामित्रने कठोर तप करके और दिव्यास्त्र प्राप्त किये; किंतु वसिष्ठजीके ब्रह्मदण्डने उन्हें भी व्यर्थ कर दिया। अब विश्वामित्र समझ गये कि क्षात्रबल तपस्वी ब्राह्मणका कुछ बिगाड़ नहीं सकता। उन्होंने स्वयं ब्राह्मणत्व प्राप्त करनेका निश्चय करके तपस्या प्रारम्भ कर दी। सैकड़ों वर्षोंके उग्र तपके पश्चात् ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर दर्शन भी दिया तो कह दिया—'वसिष्ठ आपको ब्रह्मर्षि मान लें तो आप ब्राह्मण हो जायँगे।'

विश्वामित्रजीके लिये वसिष्ठसे प्रार्थना करना तो बहुत अपमानजनक लगता था और संयोगवश जब वसिष्ठजी मिलते थे तो उन्हें राजर्षि ही कहकर पुकारते थे; इससे विश्वामित्रका क्रोध बढ़ता जाता था। वे वसिष्ठके घोर शत्रु हो गये थे। एक राक्षसको प्रेरित करके उन्होंने वसिष्ठके सौ पुत्र मरवा डाले। स्वयं भी वसिष्ठको अपमानित करने, नीचा दिखाने तथा उन्हें हानि पहुँचानेका अवसर ही ढूँढ़ते रहते थे।

'मैं नवीन सृष्टि करके उसका ब्रह्मा बनूँगा!' अपने उद्देश्यमें असफल होकर विश्वामित्रजी अद्भुत हठपर उतर आये। अपने तपोबलसे उन्होंने सचमुच नवीन सृष्टि करनी प्रारम्भ की। नवीन अन्न, नवीन तृण-तरु, नवीन पशु—वे बनाते चले जाते थे। अन्तमें ब्रह्माजीने उन्हें आकर रोक दिया। उन्हें आश्वासन दिया कि उनके बनाये पदार्थ और प्राणी ब्राह्मी सृष्टिके प्राणियोंके समान ही संसारमें रहेंगे।

कोई उपाय सफल होते न देखकर विश्वामित्रने वसिष्ठजीको ही मार डालनेका निश्चय किया। सम्मुख जाकर अनेक बार वे पराजित हो चुके थे, अत: अस्त्र-शस्त्रसे सज्जित होकर रात्रिमें छिपकर वसिष्ठके आश्रमपर पहुँचे। गुप्तरूपसे वे वसिष्ठका वध उनके अनजानमें करना चाहते थे।

चाँदनी रात थी, कुटीसे बाहर वेदीपर महर्षि वसिष्ठ अपनी पत्नीके साथ बैठे थे। अवसरकी प्रतीक्षामें विश्वामित्र पास ही वृक्षोंकी ओटमें छिपे रहे। उसी समय अरुन्धतीजीने कहा—'कैसी निर्मल ज्योत्स्ना छिटकी है!'

वसिष्ठजी बोले—'आजकी चन्द्रिका ऐसी उज्ज्वल है, जैसे आजकल विश्वामित्रजीकी तपस्याका तेज दिशाओंको आलोकित करता है।'

विश्वामित्रने इसे सुना और जैसे उन्हें साँप सूँघ गया। उनके हृदयने धिक्कारा उन्हें—'जिसे तू मारने आया है, जिससे रात-दिन द्वेष करता है, वह कौन है—यह देख! वह महापुरुष अपने सौ पुत्रोंके हत्यारेकी प्रशंसा एकान्तमें अपनी पत्नीसे कर रहा है।'

नोच फेंके विश्वामित्रने शरीरपरके शस्त्र। वे दौड़े और वसिष्ठके सम्मुख भूमिपर प्रणिपात करते दण्डवत् गिर पड़े। बद्धमूल द्वेष समाप्त हो चुका था सदाके लिये। वसिष्ठकी सहज क्षमा उसपर विजय पा चुकी थी। द्वेष और शस्त्र त्यागकर आज तपस्वी विश्वामित्र ब्राह्मणत्व प्राप्त कर चुके थे। महर्षि वसिष्ठ वेदीसे उतरकर उन्हें दोनों हाथोंसे उठाते हुए कह रहे थे—'उठिये, ब्रह्मर्षि!'

श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना

(इस जपकी अवधि कार्तिक पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०७३ से चैत्र पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०७४ तक रही है)

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम्।
स्मरन्ति ये स्मारयन्ति हरेर्नाम कलौ युगे॥

'राजन्! मनुष्योंमें वे लोग भाग्यवान् हैं तथा निश्चय ही कृतार्थ हो चुके हैं, जो इस कलियुगमें स्वयं श्रीहरिका नाम-स्मरण करते और दूसरोंसे नाम-स्मरण करवाते हैं।'

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इस वर्ष भी इस षोडश नाम-महामन्त्रका जप पर्याप्त संख्यामें हुआ है। विवरण इस प्रकार है—

(क) मन्त्र-संख्या ७०,३४,४६,१०० (सत्तर करोड़, चौंतीस लाख, छियालीस हजार, एक सौ)।

(ख) नाम-संख्या ११,२५,५१,३७,६०० (ग्यारह अरब, पचीस करोड़, इक्यावन लाख, सैंतीस हजार, छः सौ)।

(ग) षोडश नाम-महामन्त्रके अतिरिक्त अन्य मन्त्रोंका भी जप हुआ है।

(घ) बालक, युवक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, गरीब-अमीर, अपढ़ एवं विद्वान्—सभी तरहके लोगोंने उत्साहसे जपमें योग दिया है। भारतका शायद ही कोई ऐसा प्रदेश बचा हो, जहाँ जप न हुआ हो। भारतके अतिरिक्त बाहर फ्रामिंघम, मिडिलटाउन, यू०के०, यू०एस०ए०, यूनाइटेड किंगडम, नेपाल आदिसे भी जप होनेकी सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं।

स्थानोंके नाम—

अंता, अंधराठाढी, अंधेरी, अंबाजोगाई, अंबाला कैंट, अंबाला छावनी, अंबाला शहर, अकलतरा, अकबरपुर, अकोड़ा, अकोला, अगराना, अचरोल, अचानामुरली, अजमेर, अजरानाकलाँ, अठहठा, अडसीसर, अडावद, अतरसुमाँकलाँ, अधारपुर, अनगाँव, अनघौरा, अनन्तनगर, अनूपशहर, अमरावती, अमरातीघाट, अमरोह, अमलनेर, अमलोह, अमाचन, अमिलिया, अमृतपुर, अमृतसर, अम्बाह, अम्बिकानगर, अरड़का, अर्की, अलकनन्दा, अलवर, अलीपुरकला, अवरई, अवरीकला, असदपुर, असवार, असुरेश्वर, अहमदाबाद, आऊवा, आगरा, आग्राम, आडंद, आधाचाट, आनन्दनगर, आबूरोड, आमगाँवबड़ा, आरा, आर्वी, आष्टा, आलेफाटा, आलोट, आसाँवा, आसनकुंडिया, आसनसोल, इंगतपुरी, इंदरवास, इंदा, इन्दिरापुरम, इंदौर, इचलकरंजी, इजोत, इटौन्हा, इसौली, इलाहाबाद, ईसवाना, उच्चैन, उज्जैन, उड़ेला, उतरौली, उदखेड़, उदगीर, उदयपुर, उन्नाव, उमलवाड, उरतुम, उस्मानाबाद, ऊदपुर, ऊना, ऊसरी, ऋषिकेश, एकहारा, एतला, ओड़ा, ओडीट, ओबरा, औरंगाबाद, कंचनपुर, कंसरणा, कघारा, कछयाना, कछुआ, कछुआरा, कछेवारा, कजरहवाका पोखरा, कटक, कटनी, कटरा, कटाईटिकर, कटिहार, कड़ीला, कथैया, कदन्ना, कनखल, कनफारा, कनैड, कनौसी, कन्नौज, कन्हौली गजपति, कन्याना, कपासन, कफलोड़ी, कमलापुर, कमालपुर, करनसर, करनाल, करही (शुक्ल), करीमुद्दीनपुर, करैयाजागीर, करौदी, करौली, कर्णपुर, कलकत्ता, कल्याण (वेस्ट), कवलपुरामठिया, कसारीडीह, कसेराबाजार, काँगड़ा, कांदुला, काचीगुड़ा, कानड़ी, कानपुर, कान्दीवली, कालका, कालपी, कालाडेरा, कालियागंज, कालीकट, कालूखाँड़, कालूहेड़ा, काशीपुर, किदवईनगर, किरारी, किस्मीदेसर, कीसयारपुर, कीरतपुर, कुँआरिया, कुंडा, कुकड़ेश्वर, कुक्कुटपल्ली, कुक्षी, कुचामनसिटी, कुदरा, कुरमापाली, कुमासजागीर, कुम्हारपाडा, कम्हरार, कुरुक्षेत्र, कुशहर, कुशालपुरा, कुसुमसरोवर, कुसैला, केंकरा, केशरपुरा, केशवपुरा, केसिंगा, कैथल, कैमुआ, कोंच, कोईरागै, कोईलारी, कोकलकचक, कोटई, कोटद्वार, कोटवाँ, कोटा, कोठार, कोठी, कोठेरा, कोडरा, कोड़लहिया, कोथराखुर्द, कोब्रुलैखा, कोरबा, कोरापुट, कोलकाता, कोलारस, कोलिया, कोलीढेक, कोसीकला, कोसीथल, कोसीर, कोहका, कोहलमिश्र, कौड़िया, कौड़ीहर, कौहाकुड़ा, कौलती (नेपाल), कौवाताल, खंडवा, खंडेला, खंजर, खगड़िया, खजुरीरुण्डा, खजूरी, खडगवाँकला, खड़ीत, खरखो, खरगढ़, खरगोन, खराड़ी, खरेडा, खरोद, खवासा, खानकित्ता, खालवागाँव, खालिकगढ़, खिरकिया, खुँटपला, खुरपा, खुरपावड़ा, खुरई, खेड़ा रसूलपुर, खेतराजपुर, खूखूतारा, खेलदेश पाण्डेय, खैराचातर, खैराबाद, खोकराकला, गंगापुर सिटी, गंगाशहर, गंगेव, गंगोह, गंज, गगरेट, गजरौला, गड़कोट, गढ़पुरा, गढ़बसई, गढ़ेरी, गणेती, गणेशपुर, गदरपुर, गनेरी, गनोड़ा, गम्हरिया, गहमर, गाँधीनगर, गाजियाबाद, गाजीपुर, गाड़रवारा, गाड़ीपुरा, गायघाट, गीर, गुड़गाँव, गुड़ाकला, गुड़ाबीजा, गुद्दवी, गुरदासपुर, गुलबर्गा, गुवाहाटी, गोंडा, गोकुलेश्वर, गोगोलाव, गोटोर, गोड्डा, गोपालगंज, गोपालगढ़, गोपिबुंग, गोपियापारा,

गोपेश्वर, गोरखपुर, गोलप, गोलाबाजार, गोवर्धनविलास, गोवाडीहा, गौंछेड़ा, गौरखग्राम, गौरिया वरारी, ग्वालियर, घगोंट, घघरा, घनरपा, घरसोंधी, घैरहली, घाटासेर, घिंचलाय, घुंसी, घुघुली, घुनमारा, घुमारवी, घेनड़ी, चंडीगढ़, चन्द्रनगर, चंदौली, चंदला, चंदौसी, चकरा, चक्कीरामपुर, चतुरताई, चपकीबघार, चम्पाघाट, चरघरा, चरी, चरैया, चाँडेल, चाचौड़ा, चाणेयाँ, चावलपानी, चॉस, चिखलाकला, चिचोली, चिटहेरा, चिलौली, चीताखेड़ा, चीनपुर, चुरू, चेन्नई, चैतड़, चैसार, चोरबड़, चोपड़ा, चौखा, चौखुटिया, चौन्तोला, चौमहला, चौरास, चौरी, चौहटन, छकना, छपड़ी, छपिया, छाजाका नागल, छापड़ा, छिउलहा, छिरास, छैंकुरी, छोटालम्बा, छोटीकल्याणी, छोटीनगला, जंगबहादुरगंज, जंघोरा, जंडियालगुरु, जगन्नाथपुरी, जगाधरी, जगेश्वर, जनापुर, जबलपुर, जमशेदपुर, जमानी, जमुआव, जमुड़ी, जम्मू, जयपुर, जरूड़, जलंब, जलालगढ़, जलोदाखाटयान, जसो, जसवंतढ़, जसवंतपुरा, जहाँगीराबाद, जॉजगीर, जाजोद, जाजली, जानडोल, जामपाली, जिन्तूर, जिहुली, जींद, जुलगाँव (नेपाल), जैतगढ़, जैतारन, जैतो, जैपोर, जैसलमेर, जैसलसर, जोधपुर, जोरहाट, जौनायंचाकला, जौलजीवी, जौलीधार, ज्वालापुर, झहुराटभका, झाँसी, झापा, झुन्झूनू, झूँसी, झूलाघाट, झोटवाड़ा, टटेड़ा, टिकरीखिलड़ा, टिक्करी, टिमरनी, टीलाधाम, टीकमगढ़, टूंगरी, टेघरा, टोरड़ा, टोंकखुर्द, ठकुरापार, ठकठौलिया, ठठारी, ठाँ, ठाणे, ठीकरिया, ठीकरी, ठुटी, ठूठीवारी, डंडापुरा, डकोर, डडवाड़ा, डड़िहथ, डबरा, डबोक, डबारो, डांगावास, डावला, डाल्टनगंज, डीग, डीडवाना, डुंमराव, डुगली, डोंगरिया, डेलीपार, ढकनालहिया, ढाँगल, ढाँगू, ढाड़ीरावत, ढायफी, ढीमरखेड़ा, ढेकवारी, ढेगाडीह, तरकेडी, तरखान, तरोड़ा, तर्भा, ताकुला, ताजपुर, तामली, तामलीपोलय, ताल, तालबन्ना, तालागाँव, तिंवरी, तीनफेड़िया, तुनी, तुलुण्ड, तेलंगाना, तेल्हारा, तोला, तोरीबारी, त्रिकूटनगर, थाणा, थाणे, थानेसर, थुलवासा, दडीबा, दत्तनगर, दन्ततोड़िया, दत्यारसुनी, दमनपुर, दमोह, दरौना, दर्री, दभनपुर, दलसिंहसराय, दहमी, दहिवद, दांदेड़ा, दाड़ी, दातारामगढ़, दामनजोड़ी, दामोदरपुर, दारानगरगंज, दिगौड़ा, दीवानके बड़कागाँव, दिबियापुर, दिमनी, दियरी, दिल्ली, दीनपुर, दुआरी, दूबालुर, दुर्ग, देईखेड़ा, देचू, देणोक, देलुन्दा, देवनगर, देवखैरा, देवठी, देवपुर, देवरा, देवरिया, देवरीकलां, देवास, देवशरण, देशनोक, देहरागोपीपुर, देहरादून, दौलतगढ़, दौलतपुर चौक, दौसा, द्वारका, द्वारिकेशनगर, धनपुरा, धनसार, धनौरा, धर्मपुरा, धवाड़, धानीखेड़ा, धार, धारवार, धाली, नंदपुर, नअगा, नगरगाँव, नन्दावता, नदियामी, नदौरा, नन्हावाराकला, नबाबगंज, नयापुरवा, नयाबाजार, नयीदिल्ली, नरपतगंज, नलवार, नवादा, नवाशहर, नहरकाटा, नांगलपुरोहित, नांगलोई, नांदन, नागल, नागपुर, नागौर, नाचनी, नाढ़ी, नादिया, नाथूखेड़ी, नानगाँव, नारायणगढ़, नान्दडी, नालछा, नावन, नावासिटी, नासिक, निंबोलीअड्डा, निमाज, नियमताबाद, नीमच, नेवारी, नेवासा, नैनकरा, नैनवारा, नोएडा, नोखा, नोनार, नोनीहाट, नोनैती, नोहर, नौगाँव, न्यूमाधोपुर, न्यूशिमला, पंचकूला, पंडतेहड़, पंडेर, पकड़ी, पटना, पटनासिटी, पट्टी, पटौदी, पड़रीखर्द, पतालघुटकुरी, पतारी, पत्थरकोट (नेपाल), पत्योरा, पथरगुआँ, पथरी, पन्नाकिरी, पद्मनाभनगर, परभड़ी, परबत्ती, परलीबैजनाथ, परसाधाम, परसवाराघाट, परसापाली, परसिया, परोख, पलेई, पलेरा, पवई, पहंगेर, पहरा, पहारपुर, पाटई, पाटमऊ, पाटलीपुत्र, पाण्डेयपुर, पानीपेंच, पामैं, पाला, पाली, पालीमारवाड़, पाहल, पिजड़ा, पिछोर, पिठौरागढ़, पिथापुर, पिपरिया, पिपलगाँवबसंत, पिरौना, पिलखुआ, पीठीपट्टी, पीपलरावा, पीलीभीत, पुणे, पुनासा, पुपरी, पुरुणावान्ध्रागोडा, पुरेना, पुर्निया, पूरेगंगाराम, पूरबसराय, पेटलावद, पोटली, पोरबन्दर, पौआखाली, पौना, प्रतापनगर, प्रीतमनगर, प्रीतमपुरी, फतेहगढ़, फतेहपुर, फरीदाबाद, फर्रुखाबाद, फसिया, फागा, फागी, फाजिलनगर, फिरोजपुर, फिल्लौर, फुलेरा, फूलपुररामा, फूलबेहड़, फ्रामिंघम, बंगलौर, बंबई, बंसीपुर, बंतवालु, बगदड़िया, बसरी, बघेरा, बछरावा, बटेरा, बटेसरा, बड़कागाँव, बड़खेरवा, बड़पारी, बड़वानी, बड़ालू, बड़ीमुरवानी, बड़ौत, बड़वसई, बढ़लठोर, बढ़ेग, बदायूँ, बनमोर, बनवसा, बनवारीबसंत, बनेड़िया, बनोरा, बनैल, बन्नी, बभनान, बमूरिया, बमोरा, बमनियाकला, बयाना, बरवाडीह, बरडेज, बरदरी, बरमकेला, बरवाडीह, बरेली, बरैल, बरूड़, बरोरी, बरोहा, बर्डोद, बलभद्रपुर, बलरामपुर, बलिगाँव, बलिया, बलिसर, बलौदा, बसई, बसन्तपुरखुर्द, बसदेहड़ा, बस्ती, बहरोड, बहादुरपुर, बाँदनवाड़ा, बाँसवाड़ा, बाँसाकला, बागपत, बागबहरा, बाघौद, बाछौर, बाढ़, बाह्मनवाड़ा, बामौरीताल, बाप, बाबई, बामड़ोद, बामनखेड़ा, बायतु, बारा, बारीकेल, बाराबंकी, बालूमाजरा, बावल, बास, बासीन, बिगहिया, बिजयाबासन, बिटोरा, बिदराली, बिडरेली, बिरहाकन्हई, बिलरा, बिलवई, बिलासपुर, बिलौदा, बिसरा, बीकानेर, बीड़काखेड़ा, बीड़ा, बीनागंज, बीरसायर, बीसापुरकला, बुड़तरा, बुलन्दशहर, बुल्ढाणा,

बेगूँ, बेगूसराय, बेनियाकाबास, बेरलीखुर्द, बेरहामपुर, बेरला, बेरासो, बेरी, बेलड़ा, बेलासद्दी, बेलोना, बेहडीगुज्जर, बैकुंठपुर, बैला, बोकारो, बोदबड, बोदापारी, बोधन, बोराड़ा, ब्यौही, ब्रह्मनपुर, ब्रह्मावल्ली, भईन्दर, भगवानपुर, भटगाँव, भटवलिया, भटिण्डा, भडूको, भण्डावर, भदरूधनेटा, भनसुली, भन्दर, भयन्दर, भरखरा, भरतपुर, भरथना, भरसी, भरुच, भलकी, भलस्वाईसापुर, भवराणा, भस्मा, भाऊगढ़, भागलपुर, भाटनटोला, भाटापार, भाड़लू, भाणुजा, भादरा, भिण्ड, भिण्डुवा, भिनावड़ी, भीकनगाँव, भीकमगाँव, भिनाय, भिलाई, भिवण्डी, भिवानी, भीखनपुर, भीमदासपुर, भीनासर, भीलवाड़ा, भुज, भुवनेश्वर, भुसावर, भुसावल, भून्तर, भेडवन, भैंसड़ा, भैसलाना, भैसबोड़, भैरमपुर, भोकरदन, भोगपुर, भोजपुर, भोड़वालमाजरी, भोपाल, भोरड़ा, मंगराजपुर, मंडी, मकवा, मगतादीस, मगोरी, मझरिया, मझलैटा, मडू, मथुरा, मदाना, मधुबन, मधुबनी, मनकापुर, मनचंगवा, मनोरी, मलँगवा (नेपाल), मलाँड, मलेनपुरवा, मस्तुरी, महथी, महद, महमदा, महराजगंज, महरौनी, महल, महलसरा, महादेवा, महासमुन्द, महिषी, महुआ, महेश्वर, मांडल, माचलपुर, माजिरकाडा, माडलगढ़, मानधाता, माधोपुर, मारगोमुण्डा, मिझौरा, मिरचोड़ा, मिर्जापुर, मिश्रपुर, मिश्राढ़ौर, मिश्राना, मीतली, मुँगेली, मुखेड़, मुंदी, मुदगिलान, मुम्बई, मुजफ्फरनगर, मुजफ्फरपुर, मुढीपार, मुबारकपुर, मुरदाकिया, मुरमूनी, मुरादाबाद, मुर्रई, मुरैना, मुलड, मुलताई, मुल्लनपुर, मुलुण्ड, मुस्तफाबाद, मूडी, मेघौना, मेटपल्ली, मेड़तारोड, मेड़तासिटी, मेरठ, मेवड़ा, मेंहदीपुर, मैगलगंज, मैहर, मोटबुंग, मोतियाडुमरिया, मोलकोन, मोहड़ा, मोहवर्रा, मोहाली, मौजपुर, यमुनानगर, यवतमाल, रंगिया, रघुनाथपुर, रजीपुरा, रठेरा, रणग्राम, रतकुडिया, रतनपुर, रतनमहका, रतलाम, रतनागरपुर, रनवारी, रन्नी, रमपुर, ररी, रसूलपुर, रसूलिया, रहली, राँची, राऊ, राजकोट, राजनगर, राजनादगाँव, राजपुर, राजरूपपुर, राजाआहर, राजापारा, राजेन्द्रनगर, राजेपुर, रादौर, रानीपुर, रानीकटरा, रानीसागर सारंगढ़, रामगढ़, रामगुड़ीपारा, रामनगर, रामपुर, रामपुरनैकिन, रामपुरवा, रामेश्वरकम्पा, रायगढ़, रायचूर, रायपुर, रायपुरशिवाला, रायबरेली, रायरंगपुर, रावतपुर, रावतभाटा, रावली, रावतसर, राहुरी, रींगस, रुड़की, रुदौली, रुहट्टा, रेवड़ापुर रेवासी, रेहलू, रैहन, रोपा, रोहतक, रोहतास, रोहनिया, लक्ष्मणगढ़, लक्ष्मीपुरा, लखनऊ, लखना, लखनादौन, लखीमपुरखीरी, लमतड़ा, लरछुट, ललितपुर, लश्कर, लाखागुडा, लाडपुरा, लामिया, लालापुरहा, लासूरसेहान, लिखमीपुर, लिलवानी, लिलुआ, लुगासी, लुधियाना, लुहनखैरिया, लुहारी, लेडुआखाड़, लोसिंहा, लोहारा, लैमाखोंगबडा, वक्खापुरवा, वटवारा, वदनरेंगगाई, वैडीहा, वरगदहीवसंत, वर्धमान, वर्धा, वलदेवा, वल्लभनगर, वसई, वसुदेवपुर, वाकासर, वाड़ता, वापी, वाराणसी, वामन, वविलतापल्ली, वाशिंगटन (U.S.A), वासणा, वासुदेवा, वाहेगाँवदिमनी, विछलखा, विजनौर, विजौलिया, विदिशा, विद्याधरनगर, विरसिंहपुर, विराटनगर (नेपाल), विलसंडा, विशाखापट्टनम, विशाड़, विशुनपुरवा, वेरावल, वैर, वोरवली, व्यावर, शक्तिनगर, शमसाबाद, शहजनपुर, शाजापुर, शामगढ़, शाहकोट, शाहजहाँपुर, शाहतलाई, शाहदरा, शाहपुर, शाहपुरशिवली, शिंदी, शिकोहाबाद, शिवपुर, शिवरीनारायण, शिवली, शिवसागर, शिवाड़, शेखपुर, शेखमस्जिदवा, शेखावटी, शेगाँव, शेरगढ़, शेरुडा, श्यार, श्रीगंगानगर, श्रीरामनगर, श्रीरामपुरीभगवानपुर, संगढ़ेसिया, संदणा, संगनेश्वरनगर, संगावली, संघर, सकरी, सतगढ़, सतना, सतरिया, सम्बानगर, सपिया, समसपुर, सम्भल, सरथुआ, सरदमपिंडारा, सरदारसिंहकीटाली, सरयाँग, सरमौर, सलेमपुर, सल्लिया, सरैधी, सरैयाप्रवेशपुर, सल्लिया, सवाईमाधोपुर, ससना, सहरसा, सहारनपुर, सांगटी, सांगली, साँगोद, सागदापाधी, सागोली, साढ़ूमल, सागर, सादात, साडाडीह, सादाबाद, सानणपण्डितान, सानवदिया, सामला, सारेयाद, सालोन बी, सावदा, साहवा, सिंगापुर, सिंगोली, सिंगहायूसुफपुर, सिकन्दरा, सिकरौं, सिकहुला, सिन्दगाँव, सितारगंज, सिधौली, सिमरी, सिरपुर, सिरसा, सिरहौल, सिरोही, सिरौली, सिलीगुड़ी, सिवनी, सीहोर, सींगपुरा, सीकर, सीतामढ़ी, सीथल, सीनखेड़ा, सीपरीबाजार, सीमातल्ला, सुन्दरी, सुखलिया, सुगवा, सुजानगढ़, सुजानदेसर, सुधारबाजार, सुन्दरबाजार, सुरनगर, सुरही, सुल्तानपुर, सुहागपुर, सूरजपुर, सूरत, सेमरा, सेमराबाजार, सेमराघुनवारा, सेमरामेडोल, सेमराहाट, सेमरीदेव, सेम्फेंजुंग, सेंठा, सेरा (ने०), सेहरी, सोखना, सोनखर, सोनभद्र, सोनरा, सोनपुरी, सोनाहातु, सोनीपत, सोरखी, सोलन, हटनी, हटवा, हटा, हतीसा, हथियापौर, हमीरपुर, हरदा, हरदीशाहजहापुर, हरदोई, हरियावाला, हरिहरगंज, हरमारा, हरिखोरा, हरिद्वार, हरिनगर, हरिहरपुर, हल्दिया, हल्द्वानी, हल्दीगढ़, हल्दौर, हसनपालीया, हसनपुर, हसलपुर, हसुआ, हाटकोटी, हाटीबेरिया, हातोतोता, हातोद, हापुड़, हाबड़ा, हारमा, हिडली, हिरणमगरी, हिरदयगढ़, हिर्री, हिसार, हिगोलाकला, हिम्मतगंज, हुगली, हुबली, हुमायूँपुर, हैदराबाद, होजाई, होशंगाबाद।

श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

आज सारे संसारमें जीवनकी जटिलताएँ बढ़ती जा रही हैं। अधिकतर लोग अपनी असीमित भौतिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेमें संलग्न हैं। वे अपने क्षुद्र स्वार्थकी सिद्धिके लिये दूसरोंका अहित करनेमें भी कोई संकोच नहीं करते। परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, कलह और हिंसाके वातावरणमें अशान्त स्थिति है। देशके कुछ भागोंमें तो हिंसाका नग्न ताण्डव दिखायी दे रहा है। अधिकतर लोग मानसिक तनावके शिकार बनते जा रहे हैं। कलिका प्रकोप सर्वत्र व्याप्त है। प्रश्न यह होता है कि इस स्थितिका समाधान क्या है? ऋषि-महर्षि, मुनि और शास्त्रोंने इस स्थितिको अपनी अन्तर्दृष्टिसे देखकर बहुत पहलेसे यह घोषित कर दिया है कि 'कलिकालमें मानव-कल्याण और विश्वशान्तिके लिये श्रीहरि-नामके अतिरिक्त कोई दूसरा सुलभ साधन नहीं है।' इसीलिये यह बात जोर देकर शास्त्रोंमें कही गयी है कि 'भगवान् श्रीहरिका नाम ही एकमात्र जीवन है। कलियुगमें इसके अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा—चारा नहीं है'—

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

(ना०पूर्व० ४१।११५)

हमारे शास्त्रोंके अतिरिक्त अनुभवी संत-महात्माओंने भी भगवन्नाम-स्मरण-जपको कलियुगका मुख्य धर्म (ऐहिक-पारलौकिक कल्याणकारी कर्तव्य) माना है। इतना ही नहीं, जगत्के समस्त धर्म-सम्प्रदाय भी किसी-न-किसी रूपमें भगवान्के नाम-स्मरण-जपके महत्त्वको प्रतिपादित करते हैं। नामके जप-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई भी नियम नहीं है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुने भी कहा है—

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।

'हे भगवन्! आपने लोगोंकी विभिन्न रुचि देखकर नित्य-सिद्ध अपने बहुत-से नाम कृपा करके प्रकट कर दिये। प्रत्येक नाममें अपनी सारी शक्ति भर दी और नाम-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई नियम भी नहीं रखा।'

विपत्तिसे त्राण पानेके लिये आज श्रीभगवन्नामका स्मरण ही एकमात्र उपाय है। ऐसा कौन-सा विघ्न है, जो भगवन्नाम-स्मरणसे नहीं टल सकता और ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो नहीं मिल सकती? इस कलिकालमें मंगलमय भगवान्के आश्रयके लिये भगवन्नामका सहारा ही एकमात्र अवलम्बन है। अतएव भारतवर्ष एवं समस्त विश्वके कल्याणके लिये, लौकिक अभ्युदय और पारलौकिक सुख-शान्तिके लिये तथा साधकोंके परम लक्ष्य एवं मानव-जीवनके परम ध्येय—भगवान्की प्राप्तिके लिये सबको भगवन्नामका स्मरण-जप-कीर्तन करना चाहिये।

अतः 'कल्याण' के भाग्यवान् ग्राहक-अनुग्राहक, पाठक-पाठिकाएँ स्वयं तथा अपने इष्ट-मित्रोंसे प्रतिवर्ष भगवन्नाम-जप करते-कराते आये हैं।

गत वर्ष पंचानबे करोड़ नाम-जपकी प्रार्थना की गयी थी। इस वर्ष विभिन्न स्थानोंसे जो सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं; उनके अनुसार सत्तर करोड़, चौंतीस लाख, छियालीस हजार, एक सौ मन्त्रके नाम-जप हुए हैं। **पिछले वर्षकी अपेक्षा इस वर्ष श्रीभगवन्नाम जप एवं जापकोंकी संख्यामें काफी कमी हुई है, जो शोचनीय है।** भगवन्नाम-प्रेमी महानुभावोंसे प्रार्थना है कि जपकी संख्यामें विशेष उत्साह दिखलायें, जिससे भगवन्नाम-जपकी संख्यामें और वृद्धि हो सके। आशा है, अधिक उत्साहसे नाम-जप होता रहेगा।

जपकर्ताओंकी सूचना अभीतक लगातार आ रही है, किंतु विलम्बसे सूचना आनेपर उसे प्रकाशित करना सम्भव नहीं है। अतः जपकर्ताओंको जप पूरा होने (चैत्र शुक्ल पूर्णिमा)-के अनन्तर तत्काल सूचना प्रेषित करनी चाहिये, जिससे उनके जपकी संख्या प्रकाशित की जा सके।

आप महानुभावोंसे पुनः इस वर्ष पंचानबे करोड़ भगवन्नाम-मन्त्र-जपकी प्रार्थना की जा रही है। यह नाम-जप अधिक उत्साहसे करना तथा करवाना चाहिये, जिससे भगवन्नाम-जपकी संख्यामें उत्तरोत्तर वृद्धि हो।

निवेदन है कि पूर्ववत् कार्तिक शुक्ल पूर्णिमासे जप आरम्भ किया जाय और चैत्र शुक्ल पूर्णिमा (वि० सं० २०७५)-तक पूरा किया जाय। पूरे पाँच महीनेका समय है।

भगवान्के प्रभावशाली नामका जप स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण-शूद्र सभी कर सकते हैं। इसलिये 'कल्याण' के भगवद्विश्वासी पाठक-पाठिकाओंसे हाथ जोड़कर विनयपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि वे कृपापूर्वक सबके परम कल्याणकी भावनासे स्वयं अधिक-से-अधिक जप करें और प्रेमके

साथ विशेष चेष्टा करके दूसरोंसे भी जप करवायें। नियमादि सदाकी भाँति ही हैं।

(१) जप प्रारम्भ करनेकी तिथि कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा (दिनांक ४।११।२०१७ ई०) शनिवार रखी गयी है। इसके बाद किसी भी तिथिसे जप आरम्भ कर सकते हैं, परंतु उसकी पूर्ति चैत्र शुक्ल पूर्णिमा, वि० सं० २०७५ दिन–शनिवार (दिनांक ३१।३।२०१८)–को कर देनी चाहिये। इसके आगे भी अधिक जप किया जाय तो और उत्तम है।

(२) सभी वर्णों, सभी जातियों और सभी आश्रमोंके नर–नारी, बालक–वृद्ध, युवा इस मन्त्रका जप कर सकते हैं।

(३) एक व्यक्तिको प्रतिदिन उपरिनिर्दिष्ट मन्त्रका कम–से–कम १०८ बार (एक माला) जप अवश्य ही करना चाहिये, अधिक तो कितना भी किया जा सकता है।

(४) संख्याकी गिनती किसी भी प्रकारकी मालासे अथवा अंगुलियोंपर या किसी अन्य प्रकारसे भी रखी जा सकती है। तुलसीजीकी माला उत्तम होगी।

(५) यह आवश्यक नहीं है कि अमुक समय आसनपर बैठकर ही जप किया जाय। प्रात:काल उठनेके समयसे लेकर चलते–फिरते, उठते–बैठते और काम करते हुए सब समय—सोनेके समयतक इस मन्त्रका जप किया जा सकता है।

(६) बीमारी या अन्य किसी कारणवश जप न हो सके और क्रम टूटने लगे तो किसी दूसरे सज्जनसे जप करवा लेना चाहिये। पर यदि ऐसा न हो सके तो बादमें अधिक जप करके उस कमीको पूरा कर लेना चाहिये।

(७) संख्या मन्त्रकी होनी चाहिये, नामकी नहीं; उदाहरणके रूपमें—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—सोलह नामके इस मन्त्रकी एक माला प्रतिदिन जपें तो उसके प्रति मन्त्र–जपकी संख्या १०८ होती है, जिसमें भूल–चूकके लिये ८ मन्त्र बाद कर देनेपर गिनतीके लिये एक सौ मन्त्र रह जाते हैं। अतएव जिस दिन जो भाई–बहन मन्त्र–जप आरम्भ करें, उस दिनसे चैत्र शुक्ल पूर्णिमातकके मन्त्रोंका हिसाब इसी क्रमसे जोड़कर हमें अन्तमें सूचित करें। सूचना भेजनेवाले सज्जनोंको जपकी संख्याके साथ अपना नाम–पता, मोबाइल नम्बर स्पष्ट अक्षरोंमें लिखना चाहिये।

(८) प्रथम सूचना तो मन्त्र–जप प्रारम्भ करनेपर भेजी जाय, जिसमें चैत्र पूर्णिमातक जितनी जप–संख्याका संकल्प किया हो, उसका उल्लेख रहे और दूसरी बार जप आरम्भ करनेकी तिथिसे लेकर चैत्र पूर्णिमातक हुए कुल जपकी संख्या उल्लिखित हो।

(९) प्रथम सूचना प्राप्त होनेपर जपकर्ताको सदस्यता दी जाती है। द्वितीय सूचना भेजते समय सदस्य–संख्या अवश्य लिखनी चाहिये।

(१०) जप करनेवाले सज्जनको सूचना भेजने–भिजवानेमें इस बातका संकोच नहीं करना चाहिये कि जपकी संख्या प्रकट करनेसे उसका प्रभाव नष्ट हो जायगा। स्मरण रहे, ऐसे सामूहिक अनुष्ठान परस्पर उत्साहवृद्धिमें सहायक होकर प्रभावक बनते हैं।

(११) **जापक महानुभावोंको प्रतिवर्ष श्रीभगवन्नाम–जपकी सूचना अवश्य दे देनी चाहिये।**

(१२) सूचना संस्कृत, हिन्दी, मराठी, मारवाड़ी, गुजराती, बँगला, अंग्रेजी, उर्दूमें भेजी जा सकती है।

सूचना भेजनेका पता—

नामजप-कार्यालय, द्वारा—'कल्याण' सम्पादकीय विभाग, गीताप्रेस, पो०—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर)

प्रार्थी—

राधेश्याम खेमका

सम्पादक—'कल्याण'

राम जपु, राम जपु, राम जपु बावरे । घोर भव-नीर-निधि नाम निज नाव रे॥
एक ही साधन सब रिद्धि-सिद्धि साधि रे । ग्रसे कलि-रोग जोग-संजम-समाधि रे॥
भलो जो है, पोच जो है, दाहिनो जो, बाम रे । राम-नाम ही सों अंत सब ही को काम रे॥
जग नभ-बाटिका रही है फलि फूलि रे । धुवाँ कैसे धौरहर देखि तू न भूलि रे॥
राम-नाम छाड़ि जो भरोसो करै और रे । तुलसी परोसो त्यागि माँगै कूर कौर रे॥ [विनय-पत्रिका]

श्रीभगवन्नाम-जपके जापक महानुभावोंको अपनी स्थायी सदस्य-संख्या एवं नाम-पता (मोबाइल नम्बरसहित) साफ-साफ अक्षरोंमें लिखना चाहिये, जिससे उनके ग्राम/नगरका शुद्ध नाम दिया जा सके। —सम्पादक

दिल्ली पुस्तक मेलेमें
गीताप्रेस, गोरखपुरका
पुस्तक स्टाल
GITA PRESS GORAKHPUR BOOK STALL
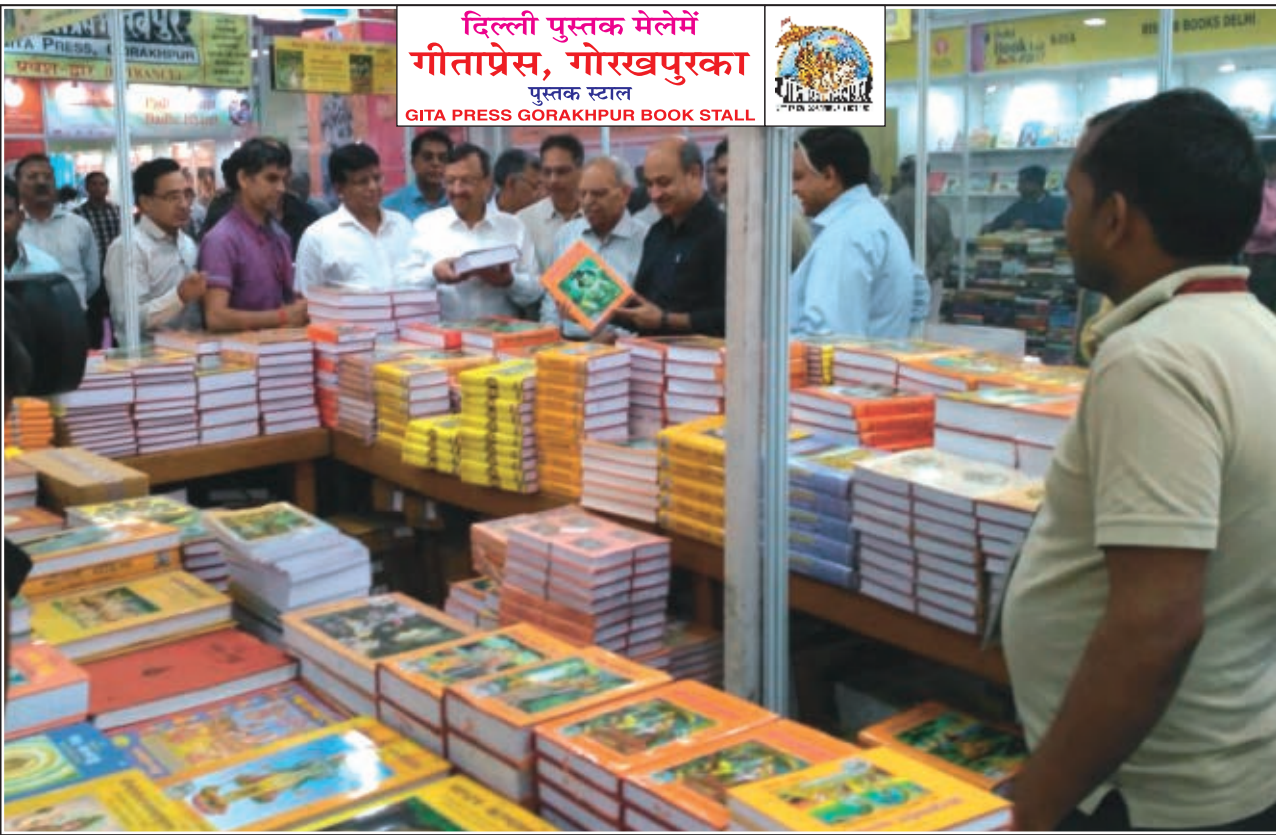
२६ अगस्तसे ३ सितम्बरतक आयोजित २३वें दिल्ली पुस्तक मेलेमें गीताप्रेसका भव्य पुस्तक-स्टॉल

वाराणसी पुस्तक मेलेमें
गीताप्रेस, गोरखपुरका
पुस्तक स्टाल
GITA PRESS GORAKHPUR BOOK STALL

Truth-Loving Harishchandra
Gita Press, Gorakhpur
हिन्दू-संस्कृति-अंक
Savitri and Satyavan
2006
શ્રીવિષ્ણુપુરાણ
સચિત્ર, ગુજરાતી-અનુવાદ સહિત
2031
ભાગવત-નવનીત
સંત શ્રીરામચન્દ્ર કેશવ ડોંગરેજી મહારાજ

टाउन हॉल ग्राउण्ड, वाराणसीमें नेशनल बुक ट्रस्टद्वारा दिनांक ९ सितम्बरसे १७ सितम्बर तक आयोजित राष्ट्रीय पुस्तक मेलेमें गीताप्रेसका भव्य पुस्तक-स्टॉल

प्र० ति० २०-९-२०१७
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR–13/2017–2019

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT	LICENCE No. WPP/GR–03/2017–2019

कल्याणके पाठकोंसे नम्र निवेदन

आगामी वर्षका कल्याण विशेषांक 'श्रीशिवमहापुराणाङ्क' [हिन्दीभाषानुवाद—उत्तरार्ध, श्लोकाङ्कसहित] समयानुसार प्रेषित करनेकी चेष्टा है। वार्षिक सदस्यता-शुल्क ₹२५० है। आप अपना सदस्यताशुल्क—

१-गीताप्रेसकी पुस्तक दूकानों अथवा स्टेशन-स्टालोंपर रसीद लेकर जमा कर सकते हैं।

२-ऑन लाइन—gitapress.org पर Online Magazine Subscription को click करके शुल्क जमा किया जा सकता है।

३-आप मनीआर्डर/चेक/ड्राफ्ट, कल्याण-कार्यालय, पो० गीताप्रेस, गोरखपुर भेज सकते हैं।

४-मनीआर्डरसे शुल्क भेजनेपर अलगसे भी अपना पूरा पता (पिनकोडके साथ), ग्राहक-संख्या, मोबाइल नम्बर आदि भेजना आवश्यक है।

५-यदि आपके द्वारा भेजा गया सदस्यता-शुल्क १५ दिसम्बरतक हमें प्राप्त नहीं होता है तो पूर्वकी भाँति VPP से अंक आपको प्रेषित कर दिया जायगा।

विशेष—पंचवर्षीय ग्राहक बनें।—सदस्यता-शुल्क ₹१२५० मात्र।

गीता-दैनन्दिनी—गीता-प्रचारका एक साधन

(प्रकाशनका मुख्य उद्देश्य—नित्य गीता-पाठ एवं मनन करनेकी प्रेरणा देना।)

व्यापारिक संस्थान दीपावली/नववर्षमें इसे उपहारस्वरूप वितरित कर गीता-प्रसारमें सहयोग दे सकते हैं।

गीता-दैनन्दिनी (सन् २०१८) अब उपलब्ध—मँगवानेमें शीघ्रता करें।

पूर्वकी भाँति सभी संस्करणोंमें सुन्दर बाइंडिंग तथा सम्पूर्ण गीताका मूल-पाठ, बहुरंगे उपासनायोग्य चित्र, प्रार्थना, कल्याणकारी लेख, वर्षभरके व्रत-त्योहार, विवाह-मुहूर्त, तिथि, वार, संक्षिप्त पञ्चाङ्ग, रूलदार पृष्ठ आदि।

पुस्तकाकार—विशिष्ट संस्करण (कोड 1431)—दैनिक पाठके लिये गीता-मूल, हिन्दी-अनुवाद, मूल्य ₹ ७५

सुन्दर प्लास्टिक आवरण (कोड 503)—गीताके मूल श्लोक एवं सूक्तियाँ मूल्य ₹ ६०

पॉकेट साइज— **सुन्दर प्लास्टिक आवरण** (कोड 506)— गीता-मूल श्लोक, मूल्य ₹ ३५

लघु आकार— **सुन्दर प्लास्टिक आवरण** (कोड 1769)— विशेष प्रकारके पतले पेपरपर मूल्य ₹ २०

अक्टूबर मासमें उपलब्धि सम्भावित—बँगला (कोड 1489), ओड़िआ (कोड 1644), तेलुगु (कोड 1714) पुस्तकाकार—विशिष्ट संस्करण, प्रत्येकका मूल्य ₹ ७५

पाठकोंके लिये आवश्यक सूचना

१. 'कल्याण' एवं 'गीताप्रेस-पुस्तक-बिक्री-विभाग' की व्यवस्था अलग-अलग है। अतः केवल कल्याणके लिये कल्याण विभागको एवं पुस्तकोंके लिये पुस्तक-बिक्री-विभागको पत्र तथा मनीऑर्डर आदि अलग-अलग भेजना चाहिये। पुस्तकोंके ऑर्डर, डिस्पैच अथवा मूल्य आदिकी जानकारीके लिये पुस्तक प्रचार-विभागके फोन (0551) 2331250, 2334721 नम्बरोंपर सम्पर्क करें।

२. कल्याणके सदस्योंको मासिक अङ्क साधारण डाकसे भेजे जाते हैं। अङ्कोंके न मिलनेकी शिकायतें बहुत अधिक आने लगी हैं। सदस्योंको मासिक अङ्क भी निश्चित रूपसे उपलब्ध हो, इसके लिये सन् २०१८ के लिये **वार्षिक सदस्यता-शुल्क ₹ २५० के अतिरिक्त ₹ २०० देनेपर प्रति माह मासिक अङ्कोंको भी रजिस्टर्ड डाकसे भेजनेकी व्यवस्था की गयी है।**

व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो०-गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ०प्र०)